महाराजश्री

एक परिचय

महाराजश्री

(एक परिचय)

पूज्यपाद अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

संक्षिप्त जीवन-रेखाएँ

परिवर्द्धित संस्करण

पूर्वार्द्ध

ब्र. प्रेमानन्द 'दादा'

उत्तरार्द्ध

साध्वी कञ्चन

प्रकाशकीय

देश-विदेशमें फैले अध्यात्मिक रुचिके लोग ही नहीं, प्रत्युत नाना विद्या-विभूषित ख्यातिलब्ध विद्वान् भी महाराजश्रीके जीवनके सम्बन्धमें बहुधा जिज्ञासा प्रकट करते रहते हैं। महाराजके लाखों-लाखों शिष्य भी अपने गुरुदेवके सम्बन्धमें परिचयकी दृष्टिसे सामान्य ज्ञान चाहते हैं। अतः उनकी जिज्ञासाके समाधानके लिए 'महाराजश्री : एक परिचय' नामक स्वल्प कलेवर पुस्तिका प्रकाशित की गयी थी, उनके जीवन कालमें ही अबतक उसके कई संस्करण भी हो चुके हैं।

अब उस पुस्तकमें उत्तरार्द्ध भाग जोड़कर थोड़ा विस्तार किया गया है। इस कार्यको महन्तश्री **ओंकारानन्दजी**ने साध्वी कंचन द्वारा सम्पन्न कराया था। इसमें महन्तश्री अपने परमाराध्य गुरुदेव (अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)के प्रति अगाध अनुराग और दृढ़ निष्ठा विद्यमान है। ज्ञानी, भक्त, जिज्ञासु साधकोंके लिए तो यह उपयोगी है ही। महाराजश्रीके जीवन-चिन्तनसे निश्चित ही इसके पाठक लाभान्वित होंगे।

प्रकाशक

ट्रस्टीगण–सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

अनुक्रमणिका

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

जन्म और शैशव

भारतवर्षके पवित्रतम वाराणसीमण्डलके एक भाग महाइच परगनेमें भगवती भागीरथीके पावन तटसे अनति-दूर, महराई नामक ग्राममें, सरयूपारीण ब्राह्मणवंशमें महाराजश्रीका जन्म संवत् १९६८ श्रावणी अमावस्या तदनुसार शुक्रवार २५ जुलाई १९११ को, पुष्य नक्षत्रमें हुआ। आपके पिता-पितामह सनातनधर्मी, सदाचारी एवं वेदशास्त्रोंके विद्वान् थे। महाइच परगनेमें पचासों ग्रामोंके वे गुरु थे। धर्मनिर्णय और न्यायमें उनकी प्रतिष्ठा थी। उन लोगोंने अपनी सनातनपरम्पराके अनुसार महाराजश्रीके संस्कार किये। इस प्रकार महाराजश्रीमें शास्त्रश्रद्धा और धर्मपक्षके बीज बाल्यावस्थासे ही हैं।

महाराजश्रीकी सात वर्षकी वयमें ही पिताश्रीका देहावसान हो गया। उन्हें अब भी अपने पिताश्रीकी मधुर आकृति और श्रुतिमनोहर उच्चारणका किञ्चित् स्मरण है। वे भावपूर्ण शैलीमें संस्कृतश्लोकों एवं

रामायणका पाठ करते थे। उनके देहावसानके अनन्तर इनके पालन-पोषणका सारा भार माताजी एवं पितामहपर पड़ा। माताजी जब रामचरितमानसका पाठ करतीं और उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू ढुलकते, तब बालक शान्तनुविहारी भी सजललोचन हो जाते या अक्षरोंको पहचाननेकी चेष्टा करते। इस प्रकार मानससे ही अक्षरारम्भ संस्कार हुआ। बहुतसे चौपाई, दोहे कण्ठस्थ हो गये। अपने पितामहके पास पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके सम्पर्कमें उनकी स्मरणशक्तिका विकास हुआ कि जो सुनते कण्ठस्थ हो जाता। आठ-नौ वर्षकी अवस्था तक सत्यनारायण-कथा, दुर्गापाठ, मुहूर्तचिन्तामणि आदि पूरे-के-पूरे याद कर लिये और दस वर्षकी अवस्थामें लघुकौमुदी, रघुवंश, तर्क-संग्रह आदिका स्वाध्याय कर लिया। इनके पितामहने ही इनके जन्मसे पूर्व बड़े भाईकी मृत्यु हो जानेपर व्रजमें जाकर शान्तनुविहारीजीकी पूजा करके पौत्रकी याचना की थी। उसीके फलस्वरूप प्रार्थनाके ठीक नौ मास पूर्ण होनेके दिन जन्म होनेके कारण वे इन्हें शान्तनु कहकर पुकारा करते थे और इनका नाम शान्तनुविहारी पड़ गया था। उन्होंने दस वर्षकी वयमें सिंहासनपर बैठाकर तिलक किया, माला पहनायी और पहले-पहल श्रीमद्भागवतका पाठ कराया। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि तबसे अबतक सारे जीवनमें श्रीमद्भागवत एक सुहृदके समान उनका साथी रहा और अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, यश, प्रतिष्ठा देकर उनका पालन-पोषण करता रहा है! उन्होंने श्रीमद्भागवतको आत्मसात् कर लिया है। वह भागवत हैं, भागवत वह हैं।

अध्ययन

महाराजश्रीकी स्थूल-शिक्षा केवल 'ब' क्लास तक हुई। अब तो वे 'स्कूल' शब्दको 'ऋ' का लोप हो जानेसे 'ऋषिकुल' शब्दका अपभ्रंश बताते हैं और 'क्लास' को 'कलांश'। उन दिनोंके दो संस्मरण वे बड़े प्रेमसे सुनाते हैं। एकबार उन्होंने चाकू अपनी धोतीकी फेंटमें लगा लिया और भूल गये। थोड़ी देरमें अपने अध्यापकसे चाकू चोरी चले जानेकी शिकायत की। सब बालक खड़े किये गये और डाँट पड़ी। एक बालकके बतलानेपर चाकू इन्हींकी फेंटसे निकला। इन्हें सबके

सामने लज्जित होना पड़ा। ये अब कहते हैं कि असल वस्तु खोयी नहीं है, उसके खोनेका भ्रम है। यह भ्रम ही अपने और दूसरेके दुःखका कारण है। भ्रम मिट जाय तो असल (अविनाशी) वस्तु तो अपना आत्मा ही है।

दूसरी घटना इस प्रकार है कि पाठशालामें निरीक्षक आया हुआ था। उसके सामने बालकोंकी परीक्षा हुई। इन्होंने पट्टपर आठ+छह=चौदहके स्थानपर तेरह लिख दिया। अध्यापकने डाँटा—'तुम्हें यह किसने सिखाया है?' महाराजश्री अब कहते हैं—भूल किसीके सिखानेसे नहीं आती है, अपने-आप आती है। उसे दूर करनेके लिए सिखाना पड़ता है। अपने स्वरूपका अज्ञान किसने सिखाया? यह अनादि है। दूर कैसे होगा? गुरु द्वारा प्राप्त वेदोक्त तत्त्वज्ञानसे!

वैसे पाठशालाके शिक्षकगण महाराजश्रीके पिता-पितामहके शिष्यही होते थे। इनके पाठशालामें आनेपर पहले वे प्रणाम कर लेते थे, पीछे पढ़ाते थे। कुछ ऐसे श्रद्धालु भी थे जो इनके पिताके देहावसान, जो कि स्वयं सिर फटकर सैकड़ों आदमियोंके सामने योगियोंके समान हुआ था, के अनन्तर शरीरमें रोग होनेपर इनके चरणामृतका पान करते थे और उनका रोग मिट जाया करता था। उन लोगोंकी यह श्रद्धा तो थी ही, पौराणिक शान्तनुके चरित्रमें भी ऐसी ही बात मिलती है।

वाराणसीमें

वाराणसीमें अध्ययन करते समय जिन विद्वानोंके सम्पर्कमें ये आये, वे सभी बड़े आस्तिक एवं भगवद्भक्त थे। पण्डित रामभवनजी उपाध्याय महावैयाकरण थे। पण्डित काशीनाथजी निष्ठावान् वेदान्ती थे। पण्डित रामपरीक्षण शास्त्री सम्पूर्ण दर्शनोंके चमत्कारी पण्डित थे। स्वामी मनीषानन्दजी प्रसिद्ध विद्वान् सन्त थे। इनके सत्संग, स्वाध्याय और अनुसरणसे मन और बुद्धिमें पवित्रता एवं तीक्ष्णताका सञ्चार हुआ। गंगास्नान, अन्नपूर्णा-विश्वनाथका दर्शन और राममन्दिरमें जाकर पण्डित भूपनारायणजी मिश्रसे प्रतिदिन श्रीमद्भागवतका श्रवण नित्यकर्म बन गया। भागवतीजी आपके सम्बन्धी तो थे ही, आपपर विशेष कृपा भी रखते थे। दोपहरके विश्रामके समय भी भागवतके कठिन स्थलोंका स्वाध्याय कराया करते थे। इस प्रकार कोई छः वर्ष तक वाराणसेय संस्कृत कालेजमें अध्ययन करते-न-करते पितामहका देहावसान हो गया और इन्हें अध्ययन छोड़कर घरपर आना पड़ा और खेती-गृहस्थी तथा गुरुवृत्तिका आश्रय लेना पड़ा।

वैराग्यका बीज

पितामह स्वयं तो ज्योतिषी थे ही, ज्योतिषशास्त्रपर उनकी बड़ी आस्था थी और बड़े-बड़े ज्योतिषशास्त्रियोंके साथ उनका सम्पर्क भी था। उन्होंने महाराजश्रीकी कुण्डली भी दिखायी। मारकेश शनैश्चरका दशाभोग था। सबने कहा कि प्रबल अनिष्टका योग है, बालकका बचना कठिन है। वह उन्नीस वर्षकी अवस्थामें ही पड़ता था। पितामहकी मृत्युके अनन्तर महाराजश्रीके मनमें बार-बार मृत्युकी कल्पना उठती और मृत्युका एक आतङ्क-सा मनमें छा जाता। वे घरसे भाग-भागकर अयोध्या, ऋषिकेश, चित्रकूट आदि स्थानोंमें चले जाते, महात्माओंसे मिलते और मृत्युसे बचनेकी युक्ति भी पूछते। अच्छे-अच्छे महात्माओंने कहा कि प्रारब्धसे प्राप्त मृत्युसे बचनेका उपाय तो हम नहीं कर सकते; किन्तु ऐसा ज्ञान दे सकते हैं जिससे मृत्युकी विभीषिका सर्वदाके लिए मिट जाय। वस्तुतः ऐसा ही हुआ। महाराजश्रीके अन्तःकरणमें अमृतब्रह्मका आविर्भाव हुआ और मृत्युकी काली छाया सर्वदाके लिए दूर भाग गयी। उन्हीं दिनों महाराजश्रीने स्वामी मंगलनाथजी आदि महात्माओंके दर्शन किये थे।

साधनका प्रारम्भ

महाराजश्रीके गाँवसे चार-पाँच मील दूर गंगातटपर परमहंस रामकृष्णके प्रशिष्य स्वामी श्रीयोगानन्दजी महाराज निवास करते थे। महाराजश्री उनसे श्रीमद्भागवतका श्रवण करके बहुत ही आनन्दित हुए और उनसे दीक्षा ग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट की। उन्होंने वेदान्तके श्रवण-मननकी प्रेरणा दी। इसपर महाराजश्रीने गोस्वामीजीकी चौपाई उन्हें सुनायी—

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा।
तब सुनिहउँ निरगुन उपदेसा॥

वे बहुत प्रसन्न हुए और गायत्रीका चौबीस लाखका पुरश्चरण पहले करवाकर तब श्रीकृष्णमन्त्रकी दीक्षा दी। इसी श्रीकृष्णमन्त्रके अनुष्ठानसे महाराजश्रीके जीवनमें महान् परिवर्तन हुए। श्रीकृष्णदर्शनपर्यन्त उपासनाकी सिद्धि होनेपर स्वयं भगवान्ने ही

तत्त्वज्ञानकी ओर उन्मुख किया। अबतक गंगातटके अनेक सन्तों
महाराजश्रीका परिचय हो चुका था और बुद्धि श्रीकृष्णदर्शनवे
फलस्वरूप पदार्थावगाहिनी हो चुकी थी। शास्त्रके रहस्य इस ढंगर
खुलते जाते जैसे परदोंकी परत-पर-परत फटती जा रही हो। महाराजश्रं
कहते हैं कि 'शास्त्रने मेरे सम्मुख अपनेको निरावरण कर दिया है। मैं
शास्त्र और धर्मकी प्रत्येक बातको हितकारी, युक्तियुक्त और उचित
मानता हूँ।' वे कहते हैं—'शास्त्रके अक्षर-अक्षर और पंक्ति-पंक्ति ठीक
हैं।' यह श्रीकृष्ण-कृपासे प्राप्त प्रतिभाका ही फल है।

जिन दिनों महाराजश्री स्वामी योगानन्दजी महाराजके सम्पर्कमें थे और मन्त्रानुष्ठान कर रहे थे, घरमें किसीसे कहे-सुने बिना स्वामीजीके पास कर्णवास चले गये। वे पक्केघाटमें राधा-कृष्णके मन्दिरके ऊपर ठहरे हुए थे। महाराजश्री भी उन्हींकी सेवामें रहने लगे। कपड़े-बर्तन धोना, पानी भरना, सफाई करना—सभी सेवा करते थे। प्रतिदिन दस हजारसे अधिक श्रीकृष्णमन्त्रका जप भी करते थे। उन दिनों एक विचित्र अनुभव हुआ—जब वे एकान्तमें भजन करनेके लिए बैठते तब ऐसा जान पड़ता मानो घरके लोग, माता-पत्नी आदि उनके सामने प्रकट हो गये। आँखोंसे झर-झर आँसू गिर रहे हैं और कह रहे हैं कि 'हम तुम्हारे बिना दुःखी हैं। शीघ्र-से-शीघ्र घर आ जाओ।' जब महाराजश्रीने श्रीस्वामी योगानन्दजीको यह बात सुनायी तो उन्होंने कहा कि 'यह सब मनका खेल है। मन भजनकी एकाग्रतासे बचनेके लिए यह सब बखेड़ा रचता है। वे लोग स्वस्थ हैं। चिन्ता मत करो, भजनमें मन लगाओ।' उनके कहनेपर भी महाराजश्रीके मनमें पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ। वे कुछ दिनोंके बाद लौटकर घर आये। वहाँ सब लोग स्वस्थ, प्रसन्न एवं निश्चिन्त थे। असलमें बात यह थी कि घरके लोगोंके मनमें इनके किसी साधुके पास

गंगातट जानेकी कल्पना ही नहीं थी। वे लोग समझते थे कि वे बिहार प्रदेशमें इमामगंज अपने शिष्योंमें गये हैं और वहाँसे बहुत-सा वस्त्र एवं रुपया लेकर आयेंगे। जब उन्हें महाराजश्रीका ठीक-ठीक वृत्तान्त ज्ञात हुआ तब वे दुःखी हुए और उनकी दृष्टिसे इतने दिन व्यर्थ गये। उस समय महाराजश्रीके चित्तपर यह छाप पड़ी कि हमारे मनमें दूसरोंके प्रेम और दुःखकी कल्पना सर्वथा एकाङ्गी होती है और दूसरे लोग जब खूब आनन्दमें होते हैं, हम उनके दुःखी होनेकी कल्पना करके दुःखी होते रहते हैं। यह भजनका विघ्न है और साधकोंको इससे सावधान रहना चाहिए।

इन्हीं दिनों एक और घटना घटी थी। महाराजश्री आठ-नौ वर्षकी वयमें ही एक दूरके सम्बन्धीके घर गये हुए थे। वहाँ एक सज्जन मिले। उन्होंने बहुत प्रेम किया। उनके प्यारका ऐसा संस्कार चित्तपर पड़ा कि अबतक उनकी बहुत याद आती थी। इसलिए महाराजश्री उनसे मिलनेके लिए गये; परन्तु उन्होंने तो पहचाना ही नहीं। आठ-नौ वर्षके कालने दोनोंके शरीर और मनमें बहुत बड़ा अन्तर डाल दिया था। याद दिलानेपर भी उनको कुछ भी स्फुरण नहीं हुआ। महाराजश्रीके चित्तपर इसका यह असर (जो कभी न सरके) पड़ा कि मन अपने-आप ही बहुत-से सम्बन्धों एवं प्रियताओंकी कल्पनाका जाल बुन लेता है और उसमें अटकता-भटकता रहता है। कहीं-न-कहीं लटक जाना उसका स्वभाव है, वस्तु स्थितिसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता।
यह छोटी-छोटी दोनों घटनाएँ वैराग्यकी वृद्धिमें कारण बनीं।

घरमें

महाराजश्रीके पिता और भाइयोंकी मृत्यु हो जानेके कारण पितामहके मनमें कुछ भय समा गया था। वे स्वयं ज्योतिषशास्त्रके बहुत बड़े विद्वान् थे। अपने पौत्रकी कुण्डलीमें मारक योग देखकर वे वंश-परम्पराकी रक्षाके लिए बहुत चिन्तित थे और काशीके विद्वानोंने भी उनके मतकी पुष्टि कर दी थी। इसलिए उन्होंने महाराजश्रीका विवाह बारह वर्षकी

वयमें ही कर दिया था। उन्नीस वर्षके पहले सन्तान भी हो चुकी थी। उन्नीस वर्षकी अवस्थामें मारकेश ग्रहका तो कोई प्रभाव नहीं पड़ा; परन्तु महाराजश्रीने मन-ही-मन उसी समय घर-गृहस्थीके सम्बन्धका परित्याग कर दिया। इनकी घर-गृहस्थी अपने स्थानपर अब भी भरी-पूरी है। वे लोग सभी तरहसे सुखी हैं। मैं वहाँ स्वयं जाकर देख आया हूँ और वे लोग भी कभी-कभी आकर महाराजश्रीके दर्शन कर जाते हैं। महाराजश्री एक-दो बार स्पेशल ट्रेनसे तीर्थयात्राके समय अपने गाँवकी ओरसे निकले तो बारह-पन्दह-सहस्र जनता इकट्ठी हो गयी। वहाँके बड़े-बड़े लोगोंने आकर स्वागत-सत्कार किया। वहाँकी निर्धन जनता अपने पलक-पाँवड़े बिछा देती है। अपनी-जन्मभूमिके प्रदेशमें शायद ही कोई महात्मा लोगोंका इतना श्रद्धा-भाजन हो।

जिन दिनों महाराजश्री ग्रहयोगके भयसे आक्रान्त थे, उन्हीं दिनों वहाँके कानूनगो जे० सिंहसे परिचय हुआ। वे जन्मजात सत्पुरुष थे। उनके साहचर्य, उत्साह और सच्चरित्रतासे महाराजश्रीको बहुत प्रेरणा मिली। दोनों साथ-साथ सन्तोंके दर्शन करने जाते, परस्पर योग, भक्ति वेदान्तकी चर्चा करते। पीछे तो उन्होंने महाराजश्रीसे गायत्रीकी दीक्षा ग्रहण कर ली और गुरु-भाव रखने लगे। आजीवन श्रद्धालु एवं उच्चकोटिके ब्रह्माभ्यासी रहे। उन्हींके साथ महाराजश्रीने गंगातटके सिद्ध सन्त श्री मोकलपुरके बाबा, काशीके बाबा गुलाबदास एवं मधईपुरके बाबाका चिरकाल तक अनुपम सत्सङ्ग-लाभ किया।

सिद्धोंके सम्पर्कमें

मोकलपुरके बाबा पचास वर्षसे भी अधिक समय तक गंगाजीकी गोदमें रहे। स्वयं गंगाजीने प्रकट होकर उनके लिए अपने बीचमें स्थान दिया था। वे आगे-पीछेकी गुप्त-प्रकट सब बातें जान जाया करते थे। वे दूसरोंके मनकी बात बता देते, तत्काल वर्षा करा देते, आँधी रोक देते, लोगोंके रोग मिटा देते थे। वहाँकी जनताके लिए वे कल्पवृक्ष थे। महाराजश्रीने अपनी आँखों उनकी सिद्धियाँ देखीं। उन्होंने महाराजश्रीको उपदेश किया था कि 'घाससे मांस और मांससे घास बनता है। इसीका

नाम संसार है। यह गंगारूप महामायाकी गोदमें उन्मज्जन-निमज्जन करता रहता है। वह बांगड़ (परमात्मा) इसमें रहकर, इसको छुए बिना सब कुछ टुकुर-टुकुर देखता रहता है; क्योंकि वह जानता जो है कि यह दीखनेवाला पसारा, यह सम्पूर्ण मायाका खेल-मेल मुझसे पृथक् नहीं है।' दूसरी बार उन्होंने कहा था—'गुड्डू, करने-धरनेसे संसार कटता नहीं, हटता नहीं और सटता नहीं। बिना किये-धरे इतना हो जो गया है। इसको मिटाना हो तो इसके मूल मर्मको जानना पड़ता है। अधिष्ठान-ज्ञानके बिना अविद्या एवं तन्मूलक संसारकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं होती।'

मधईपुरके बाबा भी बड़े सिद्ध पुरुष थे। उन्होंने ग्यारह वर्षतक कटनीसे कुछ दूर एक पहाड़ी गुफामें समाधि लगायी थी। कम खाते, कम मिलते, कम बोलते। महाराजश्री उनके सत्सङ्गके लिए बारम्बार उनके पास जाते। वे ध्यानकी शिक्षा देते थे। वे कहते थे कि—'यह मनुष्य शरीरका शरीर रेफमय है। जिस जोड़से देखो, 'र' ही 'र' मिलेगा। अपनेको रेफमय चिन्तन करके व्यक्ति, जाति, भाषा और धर्मका भाव छोड़ दो। फिर भावनात्मक रेफका ध्यान छोड़कर अपने निराकार द्रष्टा-स्वरूपका चिन्तन करो। छोटे-बड़े सभी नाम, रूप एवं कर्मोंका अर्थात् दृश्यमात्रका निषेध कर देनेपर जो अपना द्रष्टा-स्वरूप बच रहता है, वह ब्रह्म ही है।'

सन्तोंमें प्रसिद्धि

एक बार महाराजश्री घरमें किसीसे कुछ कहे बिना चित्रकूटके एकान्त वनमें भजन करनेके उद्देश्यसे निकल पड़े। वे प्रयागमें झूसीके सुप्रसिद्ध ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजीसे मिलनेके लिए गये। ब्रह्मचारीजीने बड़े प्रेमसे उन्हें रोक लिया। बिना किसी पूर्व संकल्पके उन्होंने मौन ग्रहण कर लिया और फलाहार करके रहने लगे। कई महीनों तक उनके नाम-धाम, अध्ययन, साधनका किसीको पता भी नहीं चला। ब्रह्मचारीजीको जब इनके पाण्डित्यका पता चला, तब उन्होंने धीरे-धीरे विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवतका प्रवचन प्रारम्भ करा दिया। फिर भी ये प्रवचनकालके अतिरिक्त किसीसे सम्भाषण नहीं करते थे। वहीं पहले-पहल श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके दर्शन हुए और उनके साथ वेदान्त-सम्बन्धी अनेक प्रश्नोत्तर हुए। श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजने इन्हें बहुत ही स्नेह दिया और खांडेके सत्सङ्गके लिए आमन्त्रित करवाया, जहाँ गंगा-तटके प्रसिद्ध सन्त षड्दर्शनाचार्य दण्डीस्वामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजी महाराज, श्रीकरपात्रीजी महाराज, श्रीहरनामदासजी महाराज आनेवाले थे। सच

पूछा जाय तो प्रयागके छह-सात महीने भक्त, विरक्त, महन्त, मण्डलेश्वर एवं ब्रह्मनिष्ठ सन्तोंसे परिचय एवं सत्सङ्गीकी दृष्टिसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहे। वहींसे ब्रह्मचारीजीके साथ श्रीअवधकी अविस्मरणीय यात्रा हुई। श्रीहरिबाबाजीके (बाँधपर) दर्शन हुए। उन्हींके साथ गोरखपुरके संवत्सरव्यापी अखण्ड संकीर्त्तनमें श्रीमद्भागवतपर प्रवचन करनेके लिए जानेका सुअवसर प्राप्त हुआ। गोरखपुरमें 'कल्याण'के सम्पादक-मण्डलमें महाराजश्री सात वर्षतक रहे। इनमें परमार्थ-सम्बन्धी शास्त्रोंके स्वाध्याय, विभिन्न मत-सम्प्रदायोंके आचार्योंका सत्सङ्ग एवं सबसे अधिक भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दारके स्नेह-सौहार्दका आस्वादन प्राप्त हुआ। वहीं रहकर अनेक निबन्धों एवं ग्रन्थोंका लेखन, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंका अनुवाद एवं स्पेशल ट्रेनसे देशव्यापी तीर्थयात्रा आदि महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुए। महाराजश्री अब भी कभी-कभी श्रीजयदयाल गोयनकाके अध्यात्मज्ञान, श्रीहनुमानप्रसादजीके भक्तिभाव, गोस्वामी चिम्मनलालजीके सौजन्य एवं गम्भीरपाण्डित्यका स्मरण करते हैं और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। कहना न होगी कि 'कल्याण' एवं गीताप्रेसके द्वारा महाराजश्रीने अपनी भक्तिप्रेम-सम्बन्धी मधुर अनुभूतियों, तत्त्वज्ञानके आवरण-भञ्जक रहस्यों एवं धर्मके मर्मका उद्घाटन करके मुक्त हृदयसे जनतामें वितीर्ण किया; जिससे भगवत्तत्त्व-जिज्ञासु देशके कोने-कोनेमें लाभ उठाते रहे हैं, उठा रहे हैं। 'कल्याण'के सम्पादन-विभागमें काम करते समय या उसके आगे-पीछे वहाँसे आपने किसी प्रकारका कुछ भी वेतन आदि स्वीकार नहीं किया।

सेठश्री जयदयाल गोयन्दका

कुछ समय पूर्व पुष्करके स्वामी श्री आत्मानन्दजी महाराजने एक निबन्ध लिखकर भेजा था। उसमें यह प्रतिपादन किया गया था कि जब सेठजी कर्मयोगको मुक्तिका स्वतन्त्र साधन मानते थे तब देहत्यागके समय उन्होंने महावाक्य-श्रवण क्यों करना चाहा? इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मात्मैक्य ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती। उस पत्रके उत्तरमें महाराजश्रीने जो लिखवाया था वह ज्यों-का-त्यों उद्धृत किया जाता है—

बम्बई,
७-१२-६५

परमादरणीय श्रीस्वामीजी महाराज,

सप्रेम ॐ नमो नारायणाय। कुछ दिनपूर्व आपका पत्र मिला था। आज उत्तर लिखानेका अवकाश प्राप्त हुआ है। सेठजी श्रीजयदयाल गोयन्दकाके साथ मेरा आठ-दस वर्षों तक बहुत निकटका सम्बन्ध रहा। उनसे कितने ही प्रश्नोत्तर हुए। मैं कुछ आपके सम्मुख यथास्मृति उपस्थित करता हूँ।

प्र०—सेठजी! जबतक आत्मामें भोक्तापनेकी भ्रान्ति रहेगी तबतक कर्म पूर्णतः निष्काम कैसे हो सकते हैं?

उ०—मैं पूर्णतः निष्काम होनेकी बात कब कहता हूँ? मैं तो यह कहता हूँ कि लोग निष्काम भावसे अर्थात् निःस्वार्थभावसे अपना कर्तव्य समझकर अथवा ईश्वरार्पण बुद्धिसे कर्म करें। भोक्तापनकी भ्रान्तिकी निवृत्ति, पूर्ण निष्कामता अथवा तत्त्वसाक्षात्कार यह सब तो एक साथ ही होते हैं।

प्र०—सेठजी! किसी भी वस्तुकी उपलब्धि प्रमाणसे होती है, कर्मसे नहीं। कर्मसे तो वस्तुका निर्माण होता है। भला मोक्ष, जो आत्माका स्वतःसिद्ध स्वरूप है, नित्य प्राप्त होनेपर भी भ्रान्तिसे अप्राप्त-सा प्रतीत हो रहा है, वह अन्धे कर्मसे अथवा कर्मके फल-भोगसे कैसे प्राप्त हो सकता है?

उ०-पण्डितजी! मैं कर्मसे या उपासनासे मोक्ष नहीं मानता। कर्म और उपासनासे ईश्वर प्रसन्न होता है और ईश्वरकी कृपासे ज्ञान होता है। कर्म और उपनासना ईश्वरके प्रसादका साधन है, साक्षात् मोक्षका नहीं। हम उसको साधन कहते हैं, साक्षात् साधन नहीं। साक्षात् साधन तो ज्ञान

ही है। यही बात गीतामें 'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।' और 'ज्ञानदीपेन भास्वता'में कही गयी है। ज्ञानसे ही मोक्ष होता है, इस सिद्धान्तको मैं पूर्णत: मानता हूँ। ज्ञान प्राप्तिके लिए साधक दो प्रकारके होते हैं एक पदार्थ-प्रधान और दूसरा तत्-पदार्थ-प्रधान। पहला शमादि सम्पन्न होकर श्रवण, मनन आदिके द्वारा अपने प्रयत्नकी प्रधानतासे ज्ञान प्राप्त करता है और दूसरा अपने कर्तव्य-पालन, उपासना आदिके द्वारा ईश्वरको प्रसन्न करके उसकी कृपाकी प्रधानतासे। मोक्षकी प्राप्तिके लिए ज्ञान अनिवार्य है।

एक बारकी बात है, सेठजी, घनश्यामदास जालान और स्वामी रामसुखदासजीके साथ मैं यात्रा कर रहा था। स्वामी रामसुखदासजी वर्णन कर रहे थे कि ज्ञानी पुरुषके अन्त:करणमें यह सद्‌गुण होता है, ऐसी वृत्ति होती है, यह होता है, वह होता है। घनश्यामदासजी उनका समर्थन कर रहे थे। मैंने कहा, 'स्वामीजी! जिस ज्ञानीका आप वर्णन कर रहे हैं, उसने न तो अन्त:करणको छोड़ा है और न तो उसका बोध ही हुआ है। वह तो ज्ञानी नहीं, अज्ञानी है, क्योंकि उसका चित्त छूटा नहीं।'

सेठजी हँसने लगे। बोले, 'सच्ची बात है।' घनश्यामदास-जीकी ओर देखकर बोले, 'स्वामी रामसुखदासजीका भजन अधिक है और इनका अध्यात्मविद्यामें बहुत सूक्ष्म प्रवेश है। ब्रह्मदृष्टिसे अन्त:करण और उसकी वृत्तियोंकी कोई कीमत नहीं है।'

एक बार मैंने सेठजीसे यह बातचीत की थी—

प्र०—'सेठजी! क्या चित्तकी कोई स्थिति नितान्त निर्बीज हो सकती है?'

उत्तर—'सर्वथा नहीं। समाधिमें भी बीज रहता है। उत्थान, स्मृति देखनेमें आते हैं। बीज तो अविद्या-ही है। उसके गये बिना बीजकी

निवृत्ति नहीं हो सकती। समाधि प्रारब्धसे भी हो सकती है; परन्तु अज्ञानकी निवृत्ति प्रारब्धसे नहीं हो सकती।'

एक बार सत्संगके प्रसंगमें सेठजीसे मेरी यह बातचीत हुई। मैंने पूछा—'सेठजी! आप पाँच वैदिक आचार्योंमें-से किसको अधिक मानते हैं?'

वे बोले—'वैसे तो मैं सभी आचार्योंका आदर करता हूँ और उनकी अच्छी-अच्छी बातें मानता हूँ, परन्तु रुपयेमें पन्द्रह आने शंकराचार्यकी बात मानता हूँ।'

मैंने पूछा—'वह एक आना कौन-सी बात है, जिसे आप नहीं मानते?'

उन्होंने कहा—'एक तो गीताके किसी-किसी श्लोकके अर्थमें मेरा उनसे मतभेद है और दूसरे मोक्षके लिए संन्यासाश्रम ग्रहण करना मैं आवश्यक नहीं मानता।'

मैंने कहा—'शांकर सम्प्रदायके बड़े-बड़े महात्मा मधुसूदन सरस्वती, श्रीधरस्वामी, शंकरानन्द आदि भी श्लोकोंके अर्थमें शंकराचार्यसे मतभेद रखते हैं। इससे तो कोई हानि नहीं है। रही बात संन्यासाश्रमकी सो तत्त्वज्ञानके क्षणमें अपने-आप ही हो जाता है। आप यह बताइये कि प्रस्थानत्रयीका परम तात्पर्य, जो शंकराचार्य मानते हैं, आत्मा और ब्रह्मकी एकता, वह आपको मान्य है या नहीं?

सेठजी—'पूर्णरूपसे मान्य है।'

तब मैंने मन ही मन कहा कि तब आप पन्द्रह आने नहीं, पूरे सोलह आने शंकराचार्यको मानते हैं।

एक दिन मैंने उनसे पूछा—'लोकमान्य तिलकके कर्मयोगमें एवं आपके कर्मयोगमें क्या अन्तर है?'

उन्होंने कहा—'लोकमान्य ब्रह्मज्ञानके अनन्तर कर्मयोगको अनन्य कर्तव्य मानते हैं; मैं ऐसा नहीं मानता। कर्मयोग ब्रह्मज्ञानका साधन है। ज्ञान होनेपर ज्ञानी पुरुष कर्म करे अथवा नहीं, इसमें स्वतन्त्र है।'

ये कुछ बातें आपको इसलिए लिखवायी हैं कि सेठजीकी औपनिषद सिद्धान्तमें कितनी आस्था और निष्ठा थी। अन्त समयमें उन्होंने महावाक्य-श्रवण करना चाहा और किया। यह उनके योग्य ही था। वे जानते थे कि अखण्डार्थबोधके बिना कैवल्य मुक्ति नहीं होती। उन्होंने एकबार मुझसे स्पष्ट कहा था कि भक्ति सगुण-निराकार एवं सगुण-साकार भगवान्‌की प्राप्तिमें सर्वश्रेष्ठ साधन है। कैवल्यमुक्ति केवल ब्रह्मज्ञानसे ही होती है।

वे ऋषिकेशके ब्रह्मविद्‌वरिष्ठ सन्त श्रीमंगलनाथजीको अपना गुरु मानते थे, यह तो आपने सुना ही होगा। भाईजी श्रीहनुमान प्रसादजी पोद्दार भक्त-स्वभावके हैं। अद्वैत-वेदान्तमें विशेष रुचि नहीं रखते। एक बार उन्होंने कहा था कि जिस मन्त्रका मैं जप करता हूँ, उसका सम्बन्ध द्वैताद्वैत मतसे है। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि उनको उत्तर प्रत्युत्तरमें मत खींचिये और आप जो प्रकाशित करवाना चाहते हैं, उसे प्रकाशित करवाइये।

आपका स्वास्थ्य ठीक होगा।

आपका

अ. ख.

संन्यासकी ओर

गोरखपुरमें निवास करते समय ही वाराणसी निवासी स्वामीश्री ब्रह्मानन्दजी महाराजकी प्रसिद्धि श्रवणगोचर हुई। वे एकान्तवासी एवं ध्यानके प्रबल अभ्यासी थे। दर्शनार्थियोंको चार-चार बार लौटनेके बाद बड़े सौभाग्यसे दर्शन मिलते थे। बड़े-बड़ोंको भी बिना दर्शन किये ही लौट आना पड़ता था। श्रीकरपात्रीजी महाराजने कुछ महीनों तक विद्वत् संन्यासी रहनेके अनन्तर उन्हींसे दण्ड ग्रहण किया था। वे तबतक ज्योतिष्पीठके शंकराचार्य पदपर अभिषिक्त नहीं हुए थे। महाराजश्रीने वहाँ जाकर उनका दर्शन किया। फिर तो बार-बार उनके पास जाते थे और वे बाल्यावस्थासे ही किस प्रकार अपना विरक्त एवं ध्यानमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं और क्या-क्या अद्भुत घटनाएँ उनके जीवनमें घटित हुई हैं, यह सब उनसे सुनते। महाराजश्रीने उनसे दण्ड ग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट की, उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया और कुछ नियम बताये।

महाराजश्रीने उसके बाद सम्पूर्ण भारतवर्षकी तीर्थयात्रा की। दो-तीन वर्षों तक यथाशक्ति उन नियमोंका पालन करते रहे।

एक बार महाराजश्री प्रयागमें त्रिवेणी स्नान करके बाहर निकले तो देखा कि सामने ही स्वामी श्रीब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजका शिविर लगा हुआ है। उस समय वे शंकराचार्य हो चुके थे। महाराजश्रीने उनके शिविरमें प्रवेश करके कहा—'अब मैं आगया हूँ।' उन्होंने कहा—'ठीक है।' और सन् १९४१-४२ की माघ शुक्ला एकादशीका संन्यास मुहूर्त रख दिया गया। बीचमें महाराजश्री पण्डित मदनमोहनजी मालवीयको श्रीमद्भागवत सुनानेके लिए काशी गये।

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयके प्रति महाराजश्रीके मनमें बाल्यावस्थासे ही बड़े आदरका भाव था। काशीमें विद्याध्ययन करते समय पण्डित श्रीरामभवनजी उपाध्यायके साथ वे प्रयागमें मालवीयजीकी सनातन धर्म सभामें सम्मिलित हुए थे। उसी वर्ष श्रीविष्णु दिगम्बरजीने वहाँ गीता-ज्ञानयज्ञ भी किया था। मालवीयजी पण्डितोंकी सभामें अछूतोंकी समस्यापर (उन दिनों हरिजन नाम नहीं रखा गया था) जब बोलने लगते, उनकी आँखोंसे टपाटप आँसू गिरने लगते। उपाध्यायजीने उनके प्रस्तावका विरोध किया तब उन्होंने पाँव पकड़ लिये। महाराजश्रीने मानस-मर्मज्ञ पण्डित रामपलटजी रामायणीके पास देखा कि एक साधारण टाटपर बैठकर मालवीयजी रामकथा श्रवण कर रहे हैं। झूसी एवं गोरखपुरके अखण्ड संकीर्तनमें भी मिलना हुआ। मालवीयजीने गोरखपुरमें महाराजश्रीका भागवत-प्रवचन सुना और वहीं आज्ञा की कि 'तुम कभी काशी आकर मुझे श्रीमद्भागवत सुनाना।' प्रोफेसर पण्डित जीवनशंकर याज्ञिक द्वारा समयका निश्चय हुआ और संन्यास ग्रहणके तीन दिन पूर्व महाराजश्रीने उन्हें ऊखलबन्धन-लीला सुनायी। उनके मुखपर भावोंका

चढ़ाव-उतार देखते ही बनता था। कभी रोमाञ्च, कभी अश्रुपात। अन्तमें बोले—'भई, तुमने तो मुझे बहुत आनन्द दिया। मैं निहाल हो गया।'

और काशीसे प्रयाग आकर महाराजश्री पण्डित शान्तनुविहारी द्विवेदीसे स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती हो गये। वे बताते हैं कि संन्यास ग्रहण करनेके दिन ही मैंने स्वप्न देखा कि मैं एक ऊँचे सिंहासन पर बैठा हुआ हूँ और मेरे पिता-पितामह वेदके मन्त्र बोलकर मेरा अभिषेक कर रहे हैं।'

बात तो बादकी है; परन्तु इसी प्रसङ्गमें लिख देना अनुचित नहीं होगा। ऐसा देखनेमें आया है कि जो लोग परस्पर मतभेद रखते हैं, ऐसे दोनों पक्षके लोग महाराजश्रीसे प्रेम और उनका आदर करते हैं। उदाहरणार्थ—भारतके प्रसिद्ध सन्त श्री करपात्रीजी महाराज और मालवीयजीका सर्वदा मतभेद रहा। वे हरिजन-समस्यापर एकमत न हो सके; परन्तु महाराजश्रीसे जैसे मालवीयजीने भागवत श्रवण किया वैसे ही श्रीकरपात्रीजी महाराजने भी। एक बार ऋषिकेशकी कोल घाटीमें ऊखलबन्धन सुना। वृन्दावनमें श्रीराधाकृष्ण धानुकाके घरपर महाराजश्रीको बुलाकर उन्होंने स्वयं नियमपूर्वक गोपीगीतका प्रवचन करवाया। बम्बईकी लक्षचण्डीमें तेइस दिन तक भागवत-प्रवचन करवाया। वे महाराजश्रीको पूर्ण वात्सल्यकी दृष्टिसे देखते हैं। कभी-कभी इनके पाण्डित्यकी प्रशंसा भी करते हैं और कभी-कभी सबसे मेल-जोल कर लेनेके स्वभावको फटकारते भी हैं; परन्तु दोनोंका प्रेमसम्बन्ध अखण्ड है; क्योंकि दोनों ही ब्रह्म और धर्मके स्वरूप-निर्णयके सम्बन्धमें मन्त्रब्राह्मणात्मक अपौरुषेय वेद और तदनुकूल शास्त्रसमूहको अकाट्य प्रमाण मानते हैं। इसीमें दोनोंकी एकता है जो हमेशा बनी रहेगी।

महाराजश्री बतलाते हैं कि 'संन्यास-ग्रहण करते समय या उसके

अनन्तर मुझे यह अनुभव नहीं हुआ कि इस संन्याससे मेरे स्वरूपमें कोई विशेषता आ गयी है; क्योंकि मुझे तो पहले ही अपने निर्विशेष स्वरूपका बोध हो चुका था और मैं ब्राह्मण हूँ कि मानव, गृहस्थ हूँ या संन्यासी यह सारी विशेषताएँ बाधित हो चुकी थीं। इसीसे मुझमें गृहस्थाभिमानके स्थानपर संन्यासाभिमानने अपना स्थान नहीं बनाया। हाँ, जब तक शरीर है तब तक जैसे शरीर बाधित है, वैसे ही संन्यास भी बाधित रूपसे रहे। वह एक व्यावहारिक वस्तु है, उसका कोई पारमार्थिक सत्त्व-महत्त्व नहीं है।'

वस्तुतः बात यह है इस दण्ड-ग्रहणसे भी दस-बारह वर्ष पूर्व सन् १९३०के लगभग महाराजश्री एकबार कनखलमें निवास कर रहे थे। वहाँ महात्मा शंकरानन्दजीको उन्होंने श्रीमद्भागवतके सप्तम, एकादश स्कन्ध तथा रासपंचाध्यायीका श्रवण कराया। अन्तमें महात्माने इन्हें एकान्तमें ले जाकर कहा- 'आओ, तुम्हें इस प्रवचनकी दक्षिणा दूँ।' और संन्यासके प्रैषमन्त्रका उच्चारण करवाकर कहा कि 'तुम साक्षात् ब्रह्म हो। तुम स्वयं कल्याणस्वरूप हो। अबसे तुम चाहे किसी भी आश्रममें, वेष-भूषामें, घर या बाहर रहना, अपनेको जीव कभी मत मानना। पाप-पुण्य, सुख-दुःख, अपने लोक लोकान्तरगमन और परिच्छिन्नताको स्वीकृति मत देना। यह सब अविद्याकी रचना है, तुम नित्य मुक्त हो।' तभीसे महाराजश्री अपनेको गृहस्थ-संन्यासी कुछ नहीं मानते थे; क्योंकि यह तो जीव-धर्म है। इसलिए दण्ड ग्रहण करनेपर भी ब्रह्ममयी वृत्ति ज्यों-की-त्यों बनी रही; क्योंकि ब्रह्मज्ञानके अनन्तर किसी प्रकारका अभिमान नहीं रहता।

महाराजश्री दण्डग्रहणके अनन्तर मध्यप्रदेशके जंगलोंमें चले गये; परन्तु ज्योतिष्पीठाधीश्वर श्री शंकराचार्यजी महाराजने शीघ्र ही वहाँसे

बुला लिया। और बड़े स्नेहसे अपने पास ही रहनेका आग्रह किया। वे कभी-कभी अपने सिद्धियों और वैभवकी चर्चा किया करते और महाराजश्रीसे कहते कि 'तुम अब यह सब सम्भालो।' कई बार उन्होंने एकान्तमें कहा कि 'इस पीठका शंकराचार्य तुम्हें ही होना पड़ेगा।' जबलपुरकी बड़ी-बड़ी सभाओंमें वे स्पष्ट घोषणा करते— 'करपात्री और अखण्डानन्द, यह दोनों मेरे दो हाथ हैं।' महाराजश्री महीनोंतक उनके साथ रहे-काशीमें, जबलपुरमें; परन्तु उनके अत्यधिक स्नेहको देखते हुए बार-बार उनके मनमें आता कि 'कहीं यह पीठाधीश्वरका बोझ मेरे सिर न पड़ जाय।' आजीवन उन्मुक्त वातावरणमें रहनेवाले निःस्पृह पुरुषके लिए पीठाधीश्वरकी मर्यादा और महन्तका उत्तरदायित्व भी बन्धन ही है। महाराजश्रीके बाल्यावस्थासे ही वैराग्य प्रवण मनने ऐश्वर्यसे बचनेके लिए दण्ड-त्यागका ही संकल्प किया। उपनिषदोंमें उस मन्त्रका उल्लेख है, जिसका उच्चारण करके दण्डन्यास करना चाहिए। महाराजश्रीने श्रीकृष्णकी लीलाभूमि प्रेममयी व्रजभूमिमें आकर कालिन्दीके जलमें खड़े होकर मन्त्रोचारणपूर्वक दण्डत्याग कर दिया और इस प्रकार पीठाधीश्वरीसे बच निकले। इसके बाद अनेक बार ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्यसे मिलना हुआ। उन्होंने अतिशय आग्रह किया कि पुनः दण्ड ले लो और दो बार तो बाँधकर दण्ड हाथमें दे भी दिया और कहा कि तुम्हींको यह गद्दी सम्भालनी है, परन्तु महाराजश्री उनका दिया हुआ दण्ड उन्हींके पास छोड़कर चले गये।

श्रीउड़ियाबाबाजीका सान्निध्य

महाराजश्री अपने गृहस्थ जीवनमें ही 'कल्याण'में छपे श्री उड़ियाबाबाजी महाराजके उपदेश पढ़-पढ़कर उनके प्रति श्रद्धालु हो गये थे। जिन दिनों वे श्री स्वामी योगानन्दजीके साथ कर्णवासमें रहकर श्रीकृष्ण-मन्त्रका अनुष्ठान कर रहे थे उन दिनों श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज रामघाटमें थे; परन्तु श्रीयोगानन्दजीने अतिशय वात्सल्यके कारण बाबाजीके पास नहीं जाने दिया। वे इस बातके लिए अति सावधान थे कि शास्त्रीय अनुष्ठानके बीचमें वेदान्तका सत्संग प्राप्त होनेसे कहीं शिथिलता न आजाय। सचमुच भावप्रधान साधनामें विवेकियोंका सत्संग कभी-कभी चित्तको कठोर बना देता है और द्रव दशाकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्धक हो जाता है। महाराजश्रीने स्वामीजीकी आज्ञा शिरोधार्य करके बाबाके दर्शन नहीं किये।

इसके बाद तो फिर झूसीके संवत्सरव्यापी अखण्ड संकीर्तनके उद्यापनमें ही बाबाके प्रथम दर्शन हुए। बाबाके विवेककी स्फुटता, स्नेह,

वात्सल्य और जीवन्मुक्तिके विलक्षण सुखकी मस्ती देखकर महाराजश्री मुग्ध हो गये। बाबाने भी अपने स्नेह-आकर्षणसे महाराजश्रीके चित्तको लुभा लिया। उसके बाद अयोध्यामें, खाँड़ेमें, कर्णवासमें और वृन्दावनमें अनेक बार महाराजश्री बाबाके पास जाते रहे। बाबाको उपनिषद्, कारिका, पंचदशी, गीता, श्रीमद्भागवत आदिका श्रवण कराते, उनका सत्सङ्ग करते और महीनों तक उनके पास रहते। बाँधपर भी कई बार सत्सङ्गका अवसर प्राप्त हुआ। 'कल्याण'के कामसे जब भी अवकाश मिलता, उनके पास जाते। महाराजश्रीके संन्यास ग्रहण करनेमें बाबाकी ही अन्तरङ्ग प्रेरणा थी। वे ब्राह्मणको विधिपूर्वक दण्डग्रहणकी प्रेरणा देते थे। महाराजश्रीसे उन्होंने संकेतमें कहा था कि 'निष्काम भावसे कर्म करनेपर भी उसका अभ्यास हो जानेपर कर्मासक्ति हो जाती है, साथ ही निष्काम कर्म करनेवाले सज्जनोंमें रहनेसे उनके प्रति भी ममता-मोहका उदय हो जाता है।' यह बात उन्होंने एक महात्माका यह दृष्टान्त देकर समझायी थी। महात्मा जहाँ जाते, यही कहते—'कहीं कब्र है कब्र? एक ज्ञानी गृहस्थने कहा—'कहीं मुर्दा है, मुर्दा?' महात्माजीने मुर्दा सरीखे काष्ठमौन होकर उस ज्ञानी गृहस्थके घरमें निवास किया। बादमें घरमें चोरोंके आनेपर उनका पीछा किया और उन्हें पकड़वा दिया। मुर्दा झूठा निकला और कब्र सच्ची हो गयी। महाराजश्रीने इस उपदेशको अपने लिए 'कल्याण'-परिवारसे, जो अब अपने घर-कुटुम्बसे भी अधिक ममतास्पद हो चुका था, संन्यास ग्रहण करनेकी प्रेरणा समझी और जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, ज्योतिष्पीठाधीश्वरसे संन्यास ग्रहण किया।

दण्ड लेकर भी महाराजश्री महीनों तक श्रीउड़िया-बाबाजीके सान्निध्यमें रहे और सत्सङ्ग करते-कराते रहे। दण्डग्रहणके अनन्तर सर्वप्रथम श्री हरिबाबाजीके बाँधपर उत्सवके समय महाराजश्री पधारे।

वहाँ श्री उड़ियाबाबाजी महाराज, श्री शास्त्रानन्दजी, श्री हरिबाबाजी, श्री आनन्दमयी माँ आदि भारतवर्षके प्रसिद्ध सिद्ध महापुरुष इकट्ठे थे। महाराजश्री दण्डग्रहणके पूर्व इन सभी महात्माओंको प्रणाम करते थे। इधर दण्डग्रहणके समय ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्यने कह दिया कि 'सब साधुओंको प्रणाम नहीं करना; क्योंकि ब्राह्मणोंके अतिरिक्त और किसीके लिए शास्त्रोक्त संन्यासका अधिकार नहीं है। ब्राह्मणोंमें भी केवल दण्डी स्वामी और दण्डी स्वामियोंमें भी जिनका चातुर्मास्य अधिक हो, और उनमें भी जो त्यागी और विद्वान् हों, उन्हींको नमस्कार करना चाहिए।' इस उपदेशके कारण महाराजश्रीके मनमें बड़ी दुविधा हुई। उन्होंने श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजसे एकान्तमें मिलकर पूछा कि 'ऐसी स्थितिमें मुझे क्या करना चाहिए?' उन्होंने कहा— 'दीक्षा या उपदेश ग्रहण करना हो, तब तो ब्राह्मण एवं दण्डी स्वामी हो—इसका ध्यान रखना चाहिए; परन्तु प्रणाम करना हो, तब तो सबको करना चाहिए। प्रणाम भगवद्बुद्धिसे करना चाहिए, मनुष्यबुद्धिसे नहीं। प्रणाम तो विनयका सूचक है, एक सद्गुण है। तुम जिन महात्माओंको पहले प्रणाम करते रहे हो उनको बिना वर्णका विचार किये ही करो।' बाबाका यह उपदेश महाराजश्रीने धारण कर लिया। अब भी उन्हें किसीको प्रणाम करनेमें हिचक नहीं है। उसी उत्सवमें बाँध पर महात्मा कृष्णानन्दजी अवधूत एम. ए.. एवं विपिनचन्द्रजी मिश्र एडवोकेट, दिल्ली आदिसे महाराजश्रीका परिचय हुआ था।

श्रीमद्भागवत-प्रवचन

बाँधके उत्सवके अनन्तर श्रीउड़ियाबाबाजीने महाराजश्रीको आज्ञा दी कि 'तुम शङ्करलाल, निर्मलदास एवं आञ्जनेयको लेकर शँङ्कराचार्यके पास जाओ और इन्हें संन्यास एवं ब्रह्मचर्यकी दीक्षा दिलाकर आओ।' महाराजश्रीकी सेवामें उस समय आन्ध्र देशके ब्रह्मचारी श्री पद्मनाभजी थे। ये लोग बाँधसे प्रयाग जानेके लिए गंगा किनारे-किनारे पैदल रवाना हुए; परन्तु मार्गमें किसी भक्तने आग्रह करके रेलगाड़ीमें बैठा दिया और ये लोग प्रयाग पहुँच गये। वहाँ पहुँचनेपर मालूम हुआ कि शङ्कराचार्यजी जबलपुरमें हैं। प्रयागसे जबलपुरका मार्ग जङ्गली है और पैदल चलकर वहाँ पहुँचते-पहुँचते शङ्कराचार्य वहाँ रहेंगे या अन्यत्र चले जायेंगे, यह ज्ञात नहीं था। यह लोग प्रयागमें गंगा-स्नान करते समय इसी समस्यापर विचार कर रहे थे कि एक ब्राह्मणने सुन लिया। उसने घर लाकर सबको भोजन भी कराया और जबलपुर पहुँचनेकी व्यवस्था भी कर दी। जबलपुरमें शङ्कर लाल प्रबोधानन्द सरस्वती, निर्मलदास प्रकाशानन्द सरस्वती और

आञ्जनेय शिवानन्द ब्रह्मचारी बन गये। महाराजश्री श्रीमद्भागवतका प्रवचन करते। सहस्र-सहस्र जनता श्रवण करती। उस समय और उसके बाद भी जब-जब जबलपुर गये, जितनी अधिक लोगोंकी उपस्थिति महीनों तक वहाँ देखनेमें आयी, नित्य पन्द्रह-बीस हजार तक, उतनी अन्यत्र कहीं नहीं। वहाँके श्री गिरिजानन्दन दुबे, द्वारकाप्रसाद शास्त्री, सुन्दरलाल इन्दुरख्या, प्राणाचार्य सुन्दरलाल, व्योहार राजेन्द्रसिंह, नेकनारायण सिंह, गुलाबचन्द्र गुप्त, पं० लोकनाथ शास्त्री आदि बड़े प्रेमसे महाराजश्रीका सत्संग करते थे। श्रीमद्भागवत सप्ताहमें पाँच सहस्रसे भी अधिक जनताने नियमबद्ध होकर लगातार चार-चार घण्टे बैठकर श्रवण किया। यह सब मेरी आँखों देखी बातें हैं। मैं इनमें सम्मिलित रहता था और तबसे साथ ही हूँ। इस बातको अब बाईस वर्ष हो चुके हैं। ब्रह्मचारी पद्मनाभजी अब सच्चिदानन्देन्द्र सरस्वतीके नामसे आन्ध्रप्रदेशमें विख्यात हैं। रामराज्य परिषद्के अध्यक्ष दण्डिस्वामी श्रीस्वरूपानन्दजी सरस्वती महाराजश्रीको वहीं मिले थे और उसके बाद वर्षो तक महाराजश्रीके सान्निध्यमें रहे। भारतप्रसिद्ध कथावाचक मानसमर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकर उपाध्यायने पहले-पहल वहीं मन्त्रदीक्षा ग्रहण की थी और वर्षोंतक महाराजश्रीके सान्निध्यमें रहे थे। जबलपुरको जनता अब भी महाराजश्रीके प्रति अत्यन्त श्रद्धालु है। जब वे यदा-कदा उस मार्गसे निकलते हैं, तब स्टेशनपर सहस्रोंकी भीड़, मनों पुष्पमालाओं एवं जय-जयकारकी गुञ्जारसे प्लेटफार्म भर जाता है।

महाराजश्रीने पहला चतुर्मास्य गंगातटवर्ती कर्णवास क्षेत्रमें किया था। वहाँ श्रीउड़ियाबाबाजीके सान्निध्यमें माण्डूक्य कारिकाका प्रवचन करते थे। देशके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वेदान्तियोंका वहाँ जमघट होता, वेदान्त सम्बन्धी गम्भीर प्रश्नोत्तर होते। नरवरके ब्रह्मचारी पं० जीवनदत्तजी,

जयपुरके महामहोपाध्याय पं० गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी, ब्यावरके पं० रामप्रताप शास्त्री, कविरत्न पं० अखिलानन्दजी आदि भी वहाँ आते थे और महाराजश्रीके प्रवचनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। ब्रह्मचारीजीने तो नरवरभी बुलाया। पण्डित रामप्रतापजी सदाके लिए भक्त हो गये और वृन्दावनमें भी आते-जाते रहे। उन्हीं दिनों संस्कृत ग्रन्थोंके प्रसिद्ध हिन्दी अनुवादक श्री मुनिलालजी, जो अब स्वामी सनातनदेवजीके नामसे प्रसिद्ध हैं, कर्णवासमें आये हुए थे। वे श्रीमद्भागवतका भी अनुवाद कर चुके थे और महाराजश्रीके श्रीमद्भागवत सम्बन्धी पाण्डित्यसे परिचित थे। उन्हें ज्ञात था कि महाराजश्री कभी-कभी श्रीमद्भागवत सप्ताह भी कहते हैं और रतनगढ़में गोस्वामी श्री चिम्मनलालजी तथा गोरखपुरमें श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार इनसे सप्ताह-श्रवण कर चुके हैं। उन्होंने श्रीमद्भागवत-श्रवणका संकल्प किया और बड़ी धूम-धामसे पक्के घाटपर आयोजन हुआ। श्रीउड़ियाबाबाजी, श्रीनिर्मलानन्दजीने भी नियमपूर्वक श्रवण किया। उस सप्ताहमें बड़े-बड़े चमत्कार हुए। कई लोगोंने बादमें बताया कि हमें भागवतके सिंहासनपर बालकृष्णकी झाँकी स्पष्ट दिखायी पड़ी। बारहवें स्कन्धका सप्ताह-प्रवचन करते समय शुकदेवजीकी विदाईके प्रसङ्गमें महाराजश्री बेसुध हो गये। कुछ भक्तोंको बड़ा दुःख हुआ, कुछको ऐसा अनुभव हुआ कि महाराजश्रीकी गोदमें यशोदास्तनन्धय आनन्दकन्द श्रीबालमुकुन्द क्रीड़ा कर रहे हैं। महाराजश्री बतलाते हैं कि 'मुझे उस समय स्पष्ट अनुभव हुआ कि वस्तुतः सप्ताह-प्रवचन श्रीशुकदेवजी महाराज ही कर रहे थे, मैं नहीं। उनके चले जानेसे शरीरकी शक्ति क्षीण, वाणीकी गति एवं स्वर मन्द पड़ गये थे।' तबसे प्रत्येक व्यवस्थित एवं विधिपूर्वक होनेवाले प्रवचनमें यही अनुभव होता है कि कोई दूसरा ही दैव जगत्का प्रवक्ता आकर प्रवचन कर जाता है।

यह बात महाराजश्री समय-समयपर प्रकट करते रहते हैं कि 'अभी वक्ता नहीं आया' अथवा 'वक्ता चला गया।' सच है, अखण्ड ब्रह्मस्वरूपमें वक्तृत्व आगन्तुक ही है।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि श्रीमद्भागवतके साथ महाराजश्रीके जीवनका अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अपने गृहस्थ जीवनमें तथा 'कल्याण' सम्बन्धी जीवनमें उन्होंने अनेक श्रीमद्भागवत सप्ताह किये और प्राय: प्रतिदिन श्रीमद्भागवत सम्बन्धी प्रवचन भी करते रहे। जहाँ-कहीं भी जाते-आते, यही क्रम चालू रहता। इन्हीं दिनोंमें श्रीमद्भागवतका प्रसिद्ध भावानुवाद, जो गीताप्रेस गोरखपुरसे प्रकाशित है, श्रीमद्भागवताङ्कके लिए किया और बादमें वही मूल ग्रन्थके साथ जोड़कर पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया। वृन्दावनमें श्री उड़ियाबाबाजीके आश्रममें प्रतिदिन श्रीमद्भागवतकी कथा होती थी। एकबार तो श्रीहरिबाबाजी महाराजने एक वर्षका अनुष्ठान करके श्रीधरी सहित सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत श्रवण किया था। श्रीश्री आनन्दमयी माँने एक बार सप्ताहके रूपमें और एकबार पाक्षिक प्रवचनके रूपमें श्रवण किया। इसमें काशीके प्राय: सभी बड़े-बड़े विद्वान् सम्मिलित हुए, जिनमें महामहोपाध्याय पण्डित श्रीगोपीनाथ कविराज, पण्डित मथुराप्रसाद दीक्षित, पण्डित जीवन-शङ्करजी याज्ञिक, डॉक्टर पन्नालाल आदि भी थे। श्रीआनन्दमयी माँ समय-समयपर महाराजश्रीको आमन्त्रित करती रहती हैं और जब-जब वृन्दावनमें आती हैं, नियमसे कथा-श्रवण करती हैं।

एक अलौकिक घटना

श्रीमद्भागवत-सप्ताहके सम्बन्धमें एकबार एक बहुत ही अलौकिक घटना हुई। बिहार प्रदेशके एक छोटेसे कस्बेमें जिसका नाम पचम्बा है, एक मारवाड़ी बालककी सत्रह वर्षकी आयुमें मृत्यु हो गयी थी। मृत्युका कारण कुछ भयभीत हो जाना था। उसके माँ-बाप दुःखी होकर बदरीनाथ गये और वहाँ ब्रह्मकपाली पर पिण्डदान किया। उसके बाद वह बालक अपनी माँके शरीरमें प्रवेश करने और अपनी दुर्गतिका हाल बताने लगा। उसका कहना था कि 'मरनेके बाद मैं मूर्च्छित दशामें था। ब्रह्मकपालीपर पिण्डदान करनेसे मुझमें चेतन और शक्तिका सञ्चार हुआ, जिससे मैं बात कर सकता हूँ। अब मैं भागवत-सप्ताह श्रवण करूँगा तो मेरी मुक्ति होगी।' इस कार्यके लिए उसने अपने पिताको महाराजश्रीके पास भेजा। उस समयतक महाराजश्री गृहस्थीको सप्ताह नहीं सुनाते थे। मुख्य श्रोता कोई महात्मा ही होता था; परन्तु उस बालककी आत्माने कुछ ऐसे चमत्कारिक संयोग बना दिये कि महाराजश्रीको वहाँ जाना पड़ा। उस बालकने कर्मकाण्डकी कई विधियाँ बतायीं। अपने लिए विशेष आसन बनवाया, कथा-विश्रामके सम्बन्धमें महाराजश्रीको कुछ निर्देश दिये और अन्तमें 'अब मैं मुक्त हो गया, लौटकर इस लोकमें फिर कभी नहीं आऊँगा'—ऐसा महाराजश्रीसे कहकर चला गया। गयाके आस-पास जन्म लेनेवाले एवं ब्रह्मकपालीमें पिण्डदान प्राप्त करनेवाले इस बालककी मुक्ति श्रीमद्भागवत-सप्ताहसे हुई, यह सप्ताह-प्रवचनकी एक प्रत्यक्ष महिमा है। इस प्रसङ्गमें श्रीमद्भागवतका पाठ मैंने किया था और प्रवचन महाराजश्रीने।

माताजी

माताजी धानापुरके पण्डित दिनेश मिश्रकी पुत्री थीं। उनके तीन भाई थे पद्मनाभ, कमलनाभ और कञ्जनाभ। उनके अतिरिक्त दो बहिनें और थीं। बड़ा सदाचारी एवं संस्कार-सम्पन्न पुरोहित वंश था। सम्वत् १९७५में जब उनके पतिदेवका परलोकगमन हो गया तब उन्होंने अपने श्वसुरसे आज्ञा लेकर हिमाचलके चारों धाम, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर और द्वारकाकी यात्रा की। उनके साथ ब्राह्मणोंके छब्बीस परिवार यात्रामें गये थे। वे कभी-कभी बड़े प्रेमसे अपनी तीर्थयात्राके संस्मरण सुनाया करती थीं। उन्होंने ही महाराजश्रीका बाल्यावस्थामें गोस्वामीजीके रामचरितमानसपर अक्षरोंकी पहचान करायी थी।

महाराजश्री बताते हैं कि 'जब वे रामायण पढ़तीं, उनकी-आँखोंसे झर-झर निर्झर बहने लगते तब बालक मैं सोचता और देखता कि सब अक्षर काले-काले एक-से भेंड़ जैसे हैं। फिर इनमें ऐसी क्या बात भरी है कि ये रोने-हँसने लगती हैं? माँ मेरी अंगुली अक्षरोंपर रखकर पहचान कराती और पढ़ाती। मैं एक अक्षर भी लिखना सीखनेके पहले रामायण बाँचने लगा था।'

विधवा होनेके बाद तो उनकी धर्मवृत्ति बहुत अधिक बढ़ गयी थी। महाराजश्रीके दो भाई पहले मर चुके थे। ये उनकी इकलौती सन्तान थे। फिर भी संस्कृतका स्वाध्याय करनेके लिए उन्होंने इन्हें अपनी बहिनके पास भेज दिया।

जब महाराजश्रीकी प्रवृत्ति सत्संग और आध्यात्मिक साधनामें हुई तो वे जिस-जिस सन्त-महात्माके पास जाते वह भी पता लगाकर वहाँ जाती थीं। उन्होंने भी स्वामी योगानन्द, मोकलपुरके बाबा, मधईपुरके बाबा, खपड़िया बाबा, नककटा बाबा, श्रीउड़ियाबाबा, स्वामी शंकरानन्द, श्रीहरिबाबा, श्रीआनन्दमयी माँ, श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी—सभीका सत्संग किया था। वृन्दावनके हरदेव मन्दिरके अध्यक्ष श्रीरामानुजाचार्य-वीथीपथिक श्रीरामानुजदासजी महाराजसे विशिष्टाद्वैत सम्प्रदायकी दीक्षा ली थी।

वे भजनके समय अन्तर्मुख हो जाती थीं। उन्हें अन्तरमें नाना प्रकारके दृश्य, हिमाच्छादित पर्वत, आकाशगंगा, सिद्ध सन्त और देवताओंके दर्शन हुआ करते थे। महाराजश्री कभी-कभी उन्हें चिढ़ाया करते थे कि तुम मन एकाग्र करती हो या सिनेमाके दृश्य देखती हो! उनके मुखपर साधनाकी एक ज्योति, शान्तिके एक प्रकाशके दर्शन होते थे।

महाराजश्री जब संन्यास ग्रहणके कुछ वर्ष पश्चात् वाराणसीमें श्रीश्री माँ आनन्दमयीके गायत्री कोटि-यज्ञमें सम्मिलित होने गये और श्रीमद्भागवतका पाक्षिक प्रवचन किया तब वे घर-द्वार छोड़कर महाराजश्रीके पास चली आयीं। अपने पास संचित कुल धन नौ सौ रुपये अपने पौत्र-को दे दिया और फिर प्रायः आजीवन साथ रहीं। फिरसे घर जाना न पड़े, इसके लिए उन्होंने काषाय वस्त्र धारण कर लिया था। वेदान्त श्रवणका रस बढ़ गया। उनसे कोई पूछता—'यह सब क्या है?' तो दोनों हाथसे इशारा करके बतातीं कि यह सब मैं ही हूँ, आत्मा ही है।

एकबार महाराजश्रीने उनसे पूछा—'मरकर कहाँ जाओगी?' वे बोलीं—'मरना कहाँ हैं? आना-जाना कहाँ है?' बहुतसे स्त्री-पुरुष

उनके पास घण्टों बैठकर वेदान्तकी बात किया करते थे। उन्हें संसारकी चर्चा, निन्दा-स्तुति पसन्द नहीं थी। उनके हृदयमें किसीके प्रति राग-द्वेष नहीं था। शरीर छोड़नेके दिन तक अपने सब काम उन्होंने स्वयं अपने हाथों किये।

उनका शरीर त्याग भी बहुत ही सहज ढंगसे हुआ। उसदिन श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजकी निर्वाणतिथि थी। आश्रममें साधु—ब्राह्मणोंका भोजन हो चुका था। अतिथि अभ्यागत खा-पीकर निवृत्त हो चुके थे। आश्रममें स्वयं जा जाकर हर एकसे मिल लिया फिर एक बजे दिनमें अपने कमरेके दरवाजे बन्द कर लिये। उसदिन उन्होंने दरवाजेपर कुण्डी नहीं चढ़ायी। कमरा बन्द करते समय लोगोंसे कहा 'अब हम सोने जा रहे हैं, कोई दरवाजा मत खोलना।' नित्य पानी भरकर रखनेवाले सेवकसे कहा—'तुम जाओ, अब आगेसे पानी देनेकी जरूरत नहीं रहेगी।' तीन बजे द्वार खोलकर देखा तो सांस नहीं चल रही है, शरीर छूट गया है। न किसीसे एक गिलास पानी माँगा, न कोई दवा। शान्त ज्यों-की-त्यों। दाहिनी करवट लेटी हुई, एक हाथ सिरके नीचे, दूसरा कमरके ऊपर स्वाभाविक। नेत्र बन्द, मुँह किंचित् खुला हुआ। छह बजे सायं शरीर यमुनामें प्रवाहित कर दिया गया। और तो और प्रतिवर्ष उनका भण्डारा न करना पड़े, इसके लिए श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके भण्डाराके साथ अपना भण्डारा भी मिला दिया।

सप्ताहके अनेक आयोजन

श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजने दो सप्ताह एवं बम्बईवाले स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराजने भी दो सप्ताह श्रवण किये। ये दोनों ही सप्ताहके समय निश्चल भावसे विराजमान रहते थे। श्रीहरिबाबाजी महाराज बहुत मना करनेपर भी सप्ताहके समय बैठते नहीं हैं, खड़े होकर चँवर डुलाया करते हैं। बम्बईवाले स्वामीजीने जब सप्ताह-श्रवण किया था तब श्रीरामजी ब्रह्मचारी महाराजश्रीकी सेवामें रहते थे, जो अब महाराजश्रीके गुरुदेव ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीब्रह्मानन्दजी सरस्वती महाराजके उत्तराधिकारीके रूपमें वर्तमान शङ्कराचार्य हैं। इसके अतिरिक्त महाराजश्रीने कानपुरकी गंगाकुटीमें सेठ श्रीपद्मपति सिंघानियाकी माँको, वृन्दावनमें रायबहादुर बाबू जयोतिप्रसादको, सेठ आत्मासिंहको, जबलपुरमें स्व. पं० नर्मदाप्रसाद मिश्रको, बम्बईमें भगवानदास सिंघानिया, गोरखपुरमें श्रीहनुमान्प्रसाद पोद्दार, बड़े-बड़े प्रतिष्ठित विद्वान्, सन्त एवं सेठोंको भी श्रीमद्भागवतका श्रवण कराया, जिसमें दस-दस हजार तक श्रोताओंने नियमसे श्रवण किया। विशेषता यह है कि किसी भी श्रीमद्भागवत-सप्ताहमें महाराजश्री किसी प्रकारकी दक्षिणा स्वीकार नहीं करते। सातदिन तक लोग छः-छः घण्टे भावमुग्ध होकर श्रवण करते रहते हैं, मानो दूसरे लोकमें चले गये हों। सब मौन, सब स्तब्ध निर्निमेष नेत्रोंसे महाराजश्रीकी ओर निहारते रहते हैं। सारा वातावरण ही शान्ति और आनन्दसे भर जाता है।

श्रीभक्त कोकिलजीका प्रेम

संन्यास ग्रहण करनेसे दो-तीन वर्ष पूर्व महाराजश्री वृन्दावन पधारे। रमणरेतीके अन्तर्गत श्रीजीके बगीचेमें गीताप्रेसके संस्थापक स्व० श्रीजयदयालजी गोयनकाका सत्संग चलता था। उनदिनों महाराजश्री 'कल्याण' परिवारके ही एक सदस्य थे। वृन्दावनके भक्तगण एवं सीतामऊके राजा रामसिंहजी उपस्थित थे। सेठजीके कहनेसे महाराजश्रीने वृन्दावनकी अन्तरङ्ग वस्तु नाम-महिमा, धाम-महिमा, वेणु-माधुरी एवं युगलप्रेमरसपर प्रवचन किया। विशेष करके वृन्दावनके श्रोताओंको बहुत अनुकूल पड़ा और बहुत आनन्द हुआ। उन्हीं श्रोताओंमें अपने परिवारके साथ श्रीभक्त कोकिलजी भी बैठे हुए थे। वे भावमग्न हो गये। प्रवचनके अनन्तर उन्होंने अपने सत्संगियोंसे कहा कि 'यह तो मेरे जन्म-जन्मके परिचित मालूम पड़ते हैं। इनसे कहो कि ये मेरे स्थानपर चलें।' उन लोगोंने प्रार्थना भी की; परन्तु महाराजश्री उस समय उनके यहाँ नहीं जा सके; क्योंकि 'कल्याण' सम्पादनके कामसे तुरन्त रतनगढ़ जाना अनिवार्य था। भक्त कोकिलजी अपने सत्संगियोंमें उनकी चर्चा करते रहे।

भक्त कोकिलजी सिन्ध प्रदेशके जेकमाबाद जिलेमें खास मोरपुर गाँवके रहनेवाले थे और उस प्रदेशमें प्रसिद्ध भक्त श्रीशीतलदास अथवा श्रीखण्डदासके नामसे बहुपरिचित एवं बहुचर्चित थे। इन दिनों भगवान्‌की प्रेरणा एवं श्रीगुरु नानकके आदेशानुसार इन्होंने श्रीवृन्दावनधाममें निवासकर लिया था। अब भी हजारोंकी संख्यामें उनके भक्त सारे भारतमें फैले हुए हैं।

जब महाराजश्री संन्यास ग्रहण करके वृन्दावनमें श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके सान्निध्यमें आये, तब भक्त कोकिलजीने देखते ही उन्हें पहचान लिया और उनके प्रवचनमें तथा कुटियामें अधिकतर आना प्रारम्भ कर दिया। वे महाराजश्रीके दोनों चरण अपनी गोदमें लेकर बैठ जाते, धीरे-धीरे उनपर हाथ फिराते और कहते—इनमें मुझे अपने गुरुदेव श्रीआत्मारामजीके दर्शन होते हैं। फिर तो महाराजश्रीका उनके सत्संगमें आना-जाना बढ़ गया, सम्बन्ध घनिष्ठ हो गया। महाराजश्री कहते हैं कि 'उनके सत्संगमें बैठनेपर मेरे हृदयमें लोकोत्तर चमत्कारकारी भक्तिभावोंकी स्फुरणा होती थी।' ५-७ वर्षतक उनका घनिष्ठ सम्बन्ध, आना-जाना, भजन-प्रवचन, आमोद-प्रमोद प्राप्त होता रहा। अब भी उनके सत्संगी महाराजश्रीके प्रति वैसा ही भाव रखते हैं एवं भारतवर्षके कोने-कोनेमें जहाँ-जहाँ महाराजश्री जाते हैं, वहाँ वे मिलते हैं। महाराजश्रीने 'श्रीभक्त कोकिल' के नामसे उनकी जीवन-कथा लिखी है, जो भक्ति-प्रेम-सम्बन्धी प्रसङ्गोंसे परिपूर्ण है। साईं मैयाके सत्संगमें अधिकांश उनकी कथा होती है।

पैदल यात्राएँ

महाराजश्री अपनी बाल्यावस्थासे ही पैदल यात्रा करनेमें बड़े अभ्यस्त थे। दिनभरमें २०-२५ मीलकी यात्रा कर लेना तो उनके लिए अनायाससाध्य है। कभी-कभी तो अपने घरसे २०-२५ मील काशी जाकर लौट भी आये। सप्ताहमें एकबार अपने गाँवसे चौदह मील दूर मोकलपुरके बाबाके पास जाकर सत्संग करते और लौट भी आते। जगन्नाथपुरीसे ब्रह्मपुरम् तक, गयासे बख्तियारपुर तक तथा दूसरे स्थानोंकी लम्बी-लम्बी यात्राएँ बिना किसी साधन-सम्बलके की थीं। संन्यास ग्रहणके अनन्तर श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके पास आनेपर एक तो अनूपशहरसे वृन्दावनतक तथा दूसरी वृन्दावनसे ग्वालियरतककी पैदलयात्रा उनके साथ की थी। कर्णवाससे ऋषिकेश, ऋषिकेशसे वृन्दावनकी यात्रा भी पैदल ही की थी, जिसमें स्वामी स्वरूपानन्दजी सरस्वती, स्वामी सनातन देवजी और अवधूत गणेशानन्दजी भी साथ थे। गंगोत्तरी और बदरीनाथकी यात्रा पैदल तो की ही थी, बहुत-से महात्माओंके साथ वृन्दावनसे प्रयागराजकी कुम्भयात्रा भी की थी। इसमें गाँव-गाँव, ठाँव-ठाँव इतने समारोह हुए, स्वागत-सत्कार, कथा, व्याख्यानकी धूम मच गयी कि वह अवर्णनीय है। इटावा जिलान्तर्गत औरैयामें स्वामी श्रीप्रेमानन्दजी महाराजने स्वागत एवं सत्संगका एक विशाल आयोजन किया। इस यात्रामें मैं आरम्भसे अन्ततक महाराजश्रीके साथ-साथ रहा। कहीं भण्डारे हुए तो कहीं भिक्षाटन। बीस-बीस मील मार्ग तय कर लेते और जंगलमें सो जाते थे।

तीर्थसेवनमें रुचि

महाराजश्रीकी जन्मभूमिसे गङ्गाजी एक कोस हैं और काशी दस-बारह कोस। पितामहकी व्रजयात्रासे जन्मका सम्बन्ध है। इस प्रकार विचार करनेपर जान पड़ता है कि तीर्थस्थानोंके साथ महाराजश्रीका कोई पूर्व सम्बन्ध अवश्य है। माताजीने पिताकी मृत्युके अनन्तर चारों धामकी यात्रा की। उस समय आप पितामहके साथ घरमें ही रहे। जब आप माँसे मिलनेके लिए मचलते तो पितामह सुनाते कि आज तुम्हारी माँ किस तीर्थमें हैं और उस तीर्थकी पौराणिक कथा क्या है। उस समय महाराजश्री माँके साथ तीर्थमें जा नहीं सके थे; परन्तु उनके सम्बन्धमें भीतर-ही-भीतर एक लालसाका बीज पड़ गया था। अध्ययनके समय जब वे काशीमें रहते तो गङ्गास्नान और अन्नपूर्णा, विश्वनाथका दर्शन अवश्य करते। उन्हीं दिनों योगभाष्य पढ़ाते समय इनकी नानीके गुरुदेव दिगम्बर न्यस्तदण्ड स्वामी श्रीमनीषानन्द सरस्वतीजीने यह संस्कार डाला था कि 'ईश्वरप्रणिधान अर्थात् ईश्वरके प्रति अपने सम्पूर्ण कर्मोंका समर्पण किये बिना कोई भी मनुष्य शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता।' आककी चौकीपर बैठकर सम्पूर्ण शास्त्रोंका रहस्य उद्घाटन करनेवाले सिद्ध पण्डित रामपरीक्षण शास्त्रीने कहा था कि 'उपासनाके बिना शास्त्रोंका असली रहस्य समझनेमें नहीं आता।' महावैयाकरण पण्डित श्रीरामभवन उपाध्याय प्रतिदिन अन्नपूर्णाका दर्शन करने जाते थे। आठ आनेकी प्रतिदिन पुष्पमाला चढ़ाते। उनका कहना था कि 'माँ अन्नपूर्णाकी कृपासे ही मुझे सम्पूर्ण विद्या एवं उन्नति प्राप्त हुई है।' काशीमें ही एक बड़े तितिक्षु एवं अनुभवी सन्त श्रीहरिहरबाबाजी महाराज नावपर रहते थे। महाराजश्री उनका दर्शन करने गये। कई सज्जन हरिहरबाबाके चारों ओर बैठकर शुद्ध-अशुद्ध,

जैसा-कैसा पाठ कर रहे थे। एक पण्डितने पूछा कि 'बाबा, इन अशुद्ध पाठ करनेवालोंको आप मना क्यों नहीं करते?' बाबाने हँसकर कहा—'किसीका दोष बताना साधुका काम नहीं है।' एक बार बाँधवाले श्रीहरिबाबाजी महाराजने भी ऐसा ही कहा था। वे बोले—'सब कुछ ईश्वरके सामने हो रहा है। उसको नापसन्द हो तो रोक दे। सन्त ईश्वरको देखेगा, दूसरेको देखकर अपना मन क्यों बिगाड़े?' महाराजश्रीके चित्तपर इन सूक्तियोंका बड़ा प्रभाव पड़ा। आगे चलकर इन्होंने उनके जीवनमें बड़ी गहराईसे स्थान प्राप्त किया।

महाराजश्री कभी-कभी श्रीअवधमें भी जाया करते थे, अब भी जाते हैं। एक बार वहाँ इन्होंने जानकी घाटवाले पण्डितजी श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराजसे प्रश्न किया—'बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं होती, ऐसा श्रुतिने कहा है, फिर सरयू-स्नानसे मुक्ति होती है, इसका क्या अर्थ है?' वे बोले—'मुक्तिकी संवित् होना आवश्यक है। काशीमें मरनेसे ही, प्रयागमें गिरनेसे ही या नामोच्चारणसे ही, संवित् मुक्तिका हेतु है। उपासनाजन्य संवित् सालोक्यादिका हेतु है, महावाक्यजन्य कैवल्यका।' महाराजश्रीको यह समन्वय बहुत प्रिय लगा। वे अब भी कहते हैं कि 'सगुण ब्रह्मकी प्राप्तिके लिए भक्ति स्वतन्त्र साधन है। निर्गुण ब्रह्मबोधमें केवल महावाक्य ही प्रमाण है। सन्तोंका साधारण वार्तालाप भी जीवोंके लिए कल्याणकारी होता है।' पण्डितजी पहले पढ़े-लिखे नहीं थे। हनुमानजीकी कृपासे ही वे सर्वशास्त्र-पारङ्गत हो गये थे। महाराजश्रीने उनसे कहा—'अब मैं विरक्त होकर भजन करना चाहता हूँ।' पण्डितजीने कहा—'तुम्हारा मकान कच्चा, घरमें तीन-चार प्राणी और भोजनके लिए साधारण दाल-रोटी मिलती है। हमारा आश्रम पक्का, इसमें रहनेवाले सैकड़ों साधु और खानेके लिए लड्डू-पूड़ी। इसमें कौन-सी वैराग्यकी बात है?'

महाराजश्री बार-बार हरिद्वार, ऋषिकेश भी यात्रा करते और वहाँ महीनों तक निवास करते। वैराग्य-भूमि गङ्गातटका आनन्द लेते। स्वामी श्रीमंगलनाथजी महाराजका अत्यन्त वृद्ध और रुग्ण अवस्थामें उन्होंने दर्शन किया था। वे उत्तराखण्डके एक ब्रह्मनिष्ठ श्रेष्ठ महापुरुष थे। उनका कहना था कि 'एक अन्त:करणमें एक साथ अनुभूति और स्मृति— दोनों नहीं रह सकतीं। जिसका अनुभव हो रहा है, वह अपरोक्ष है, उसका स्मरण क्या? जिसका स्मरण हो रहा है, वह परोक्ष है, उसका अनुभव क्या? इसलिए प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न ब्रह्मतत्त्वका जब साक्षात् अपरोक्ष हो जाता है, अविद्या निवृत्त हो जाती है, तब वह सदा विभात साक्षात् अनुभवस्वरूप ही है। इसलिए उसके स्मरणकी कोई अपेक्षा नहीं है। सच पूछो तो जिसको स्मृति, ब्रह्माकारवृत्ति, निदिध्यासन, अभ्यास अथवा समाधिकी आवश्यकता बनी हुई है, उसको ब्रह्मसाक्षात्कार हुआ ही नहीं है।' महाराजश्री वेदान्त-सत्संगके प्रसंगमें आनन्दमें भरकर उनकी यह बात बार-बार दुहराया करते हैं।

महाराजश्री पहले गोयनकाजीके सत्संगमें जाकर चुपचाप बैठे रहा करते थे। किसीसे कोई परिचय नहीं था। पहले-पहल एकान्तमें मिलनेपर गोयनकाजीने पञ्चदशीकी कई ऐसी बातें बतायी थीं जैसे, प्रारब्धसे पाप होना आदि, जिन्हें वे नहीं मानते थे और कहते थे कि समाजपर उसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। महाराजश्रीने बड़े ध्यानसे उनकी बात सुनी और प्राचीन महात्माओंके ग्रन्थोंपर विचार करनेके लिए एक सजग दृष्टि प्राप्त हुई। बादमें 'कल्याण' परिवारके साथ सम्बन्ध जुड़ जानेपर तो महाराजश्री प्राय: प्रतिवर्ष गरमीके दिनोंमें स्वर्गाश्रम जाते और वहाँके सत्संगमें कथा-प्रवचन करते। महाराजश्रीका श्रीमद्भागवतपर

असाधारण अधिकार देखकर लोग आश्चर्यचकित हो जाते और बार-बार अनुरोधर्पूक राधा-माधव-माधुरीका पान करते।

संन्यासी होनेके अनन्तर जब-जब उधर गये, गीता-भवनमें, परमार्थ-निकेतनमें, कालीकमली-क्षेत्र एवं पंजाब सिन्ध-क्षेत्रके सत्संग भवनमें प्रवचन करते। प्रात:काल करते। प्रात:काल और सायंकाल स्वाभाविक ही गङ्गातटपर वसुधाराके पास जाकर बैठ जाते। ऋषिकेश, कैलासाश्रम एवं झाड़ियोंमें रहनेवाले विरक्त सन्तोंकी भीड़ जमा हो जाती। सैकड़ों सत्संग-प्रेमी गृहस्थ स्त्री-पुरुष भी आजाते। उन्मुक्त प्रश्नोत्तर होते, वेदान्तका निरूपण होता। वहाँ गम्भीर युक्ति एवं प्रयुक्तियोंके द्वारा यह सिद्ध सिद्धान्त प्रकट होता कि 'अपना आत्मा ही ब्रह्म है। ब्रह्म एकरस, अद्वितीय चिन्मात्र है। चिन्मात्र नित्यप्राप्त होनेपर भी अविद्यासे अप्राप्त है। अविद्याकी निवृत्तिके लिए ज्ञानके सिवाय और कोई साधन नहीं हो सकता। ज्ञानको कर्म, उपासना, योग आदि किसीकी अपेक्षा नहीं है। प्रपञ्च नित्य निवृत्त ही है। अविद्याकी निवृत्ति होनेपर कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं रहता। जबतक कर्तव्य शेष है तबतक परिच्छिन्न कर्त्तापनकी भ्रान्ति शेष है, ऐसा समझना चाहिए।' इन प्राचीन सिद्धान्तोंका निरूपण करनेके लिए महाराजश्रीकी बुद्धिमें नवीन-नवीन युक्तियोंका उन्मेष होता है। नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा उनका जन्मजात सहज गुण है। बादमें महाराजश्री ऋषिकेश जाते तो विरक्त सन्तोंमें सत्संग तो होता-ही, आपका निवास ब्रह्मलीन महामण्डलेश्वर स्वामीश्री शुकदेवानन्दजी महाराजके द्वारा स्थापित परमार्थ-निकेतनमें होता और कथा-प्रवचन भी। स्वामीजी महाराजने अपने आश्रमको गङ्गातटका स्वर्ग बना दिया है।

❀

उत्तराखण्डका आनन्द

महाराजश्री संन्यास-ग्रहणके अनन्तर ही उत्तरकाशी गये। मसूरीसे लालोड़ीका मार्ग उन दिनों बहुत कठिन था। चीड़के पत्ते, नाले, गुफाएँ और बहुत कठिन उतराइयोंमें होते हुए तीन दिनमें वहाँ पहुँचे। अभी-अभी वहाँ पहुँचे ही थे कि उत्तराखण्डके अत्यन्त विरक्त एवं ब्रह्मनिष्ठ

महात्मा ब्रह्मलीन श्री ब्रह्मप्रकाशजी महाराजको पता चल गया और वे मिलनेके लिए महाराजश्रीके निवास-स्थानपर आये। पहला दर्शन था, महाराजश्री उन्हें पहचानते नहीं थे। वे निरभिमानता एवं सरलताकी मूर्ति थे। आये और प्रणाम करके नीचे बैठ गये। अच्छा सत्संग हुआ। इसी बीचमें किसीने आकर कहा कि 'यह तो श्रीब्रह्मप्रकाशजी हैं।' महाराजश्रीने बहुत आग्रह करके उन्हें अपने आसनपर बैठाया और उनके पूछनेपर सुनाया कि 'प्रत्यक् चैतन्यसे अभिन्न हुए बिना ब्रह्मकी पूर्णता, चेतनता, आनन्दरूपता एवं अद्वितीयता सिद्ध नहीं हो सकती। अपनेसे अन्य दृश्य होगा या तो कल्पित। जो मुझसे भिन्न है या मैं जिससे भिन्न हूँ, वह पूर्ण अथवा अद्वितीय कैसे हो सकता है? अन्य परम प्रेमास्पद भी नहीं हो सकता। इसलिए अभेद ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है।'

दूसरे दिन महाराजश्री स्वामी श्रीब्रह्मप्रकाशजीकी कुटिया पर गये। स्वामीजीने आतिथ्यसत्कारके रूपमें ब्रह्मसूत्रका सेतून्मानाधिकरण सुनाया। पहले उन्होंने पूर्वपक्षकी स्थापना की—'श्रुतिमें कहा गया है कि जीव नियम्य है और ब्रह्म नियामक; क्योंकि वह सेतु है। जीव शतधा कल्पित बालाग्र-शतभागके समान छोटा है और ब्रह्म आकाशके समान सर्वगत है—यह ऊन्मान (परिमाण) है। यह जीव सुषुप्तिमें ब्रह्मसे मिल जाता है—यह सम्बन्ध है। जीव और ईश्वर दो पक्षी हैं, यह भेद है। इन श्रुतियोंके अनुसार जीव और ईश्वरका भेद ही न्यायसंगत है।' इसके पश्चात् स्वयं उन्होंने सिद्धान्तका निरूपण किया—'सेतु शब्दका अर्थ होता है खेतोंकी मेंड़। इसी प्रकार ब्रह्म भी वर्णाश्रम-मर्यादाका व्यवस्थापक है। ब्रह्मज्ञानके पूर्व जीव और ब्रह्मका कल्पित भेद माना हुआ है, इसलिए नियम्य-नियामक भाव भी व्यावहारिक है। जीवको अणु और ईश्वरको विभु 'तत्पदार्थ' एवं 'त्वंपदार्थ'के शोधनके लिए कहा गया है। जैसे,

ब्रह्मज्ञानके लिए मायाको तीन पाद और ब्रह्मको तुरीय पाद अथवा विश्वभूतको एक पाद, दिव्य अमृतको तीन पाद कहा गया है, ठीक वैसा ही यह परिमाण भी है; क्योंकि बिना पदार्थ-शोधनके एकताका ज्ञान होना सम्भव नहीं है। सम्बन्ध और भेदका व्यपदेश भी छिद्रभेदसे प्रकाशभेदके समान औपाधिक ही है। इस प्रकार श्रुति, सूत्र, स्मृति, युक्ति, न्यायपूर्वक विचार करनेसे आत्मा और ब्रह्मका अभेद ही सर्वोत्तम सिद्ध सिद्धान्त है।'

महाराजश्री जबतक उत्तरकाशीमें रहे, आपसे बार-बार मिलना और सत्संग होता रहा। तबसे अबतक उत्तरकाशी, स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश आदिमें अनेकों बार मिलना हुआ है। स्वामीजी महाराजश्रीसे अत्यधिक प्रेम करते थे। उनका जीवनदर्शन अविरोधी था। वे सबकी प्रशंसा ही करते थे। उन्होंने कभी किसीकी निन्दा या आलोचना नहीं की। अस्तु!

उत्तरकाशीमें ही एक वयोवृद्ध सन्त रहते थे। उनका नाम था देवीगिरिजी। महाराजश्री उनका दर्शन करनेके लिए जाया करते थे। उन्हें उत्तरकाशीसे नीचे आना पसन्द नहीं था। एकबार श्रीआनन्दमयी माँके उत्सवमें सम्मिलित होनेके लिए बहुत आग्रह करके उन्हें काशी लाया गया तो उन्होंने मसूरी मार्गसे आनेको मना कर दिया। कहते थे—'यह तो भोग-भूमि है।' उत्तरकाशीमें वे महाराजश्रीको अष्टावक्र गीताके श्लोक सुनाया करते थे—'**न त्यागो न ग्रहो लयः।**' आत्मा स्वतः परिपूर्ण ब्रह्म है; उसमें न किसीका त्याग करना है, न ग्रहण करना है, न लीन होना है। सोते रहें तो हमारी कोई हानि नहीं, यत्न करें तो कोई सिद्धि नहीं है। हम तो बाबा! नाश-उल्लास, ह्रास-विकासके झगड़ेसे मुक्त होकर अपने स्वरूपमें स्थित हैं। बड़े निष्ठावान् महात्मा थे। महाराजश्रीपर उनकी मस्ती और रहनीका विशेष प्रभाव पड़ा।

उत्तरकाशीमें ही श्रीतपोवन स्वामीजीका सत्संग भी प्राप्त हुआ। उनकी सरलता, सौजन्य एवं मिलनसारीका अब भी स्मरण होता है। उन्होंने महाराजश्रीके साथ-साथ गंगोत्तरीकी यात्रा भी की थी। वे महाराजश्रीसे कहा करते थे कि 'अखण्डानन्दजी! आप उत्तराखण्डमें आजाइये। यहाँके वृद्ध सन्त अब शरीर छोड़ते जा रहे हैं। उनका स्थान पूरा नहीं हो रहा है। अब आप आकर यहाँ निवास कीजिये तो यहाँके मुमुक्षुओं, जिज्ञासुओंको बड़ा लाभ होगा। नियम ले लीजिये कि ऋषिकेशसे नीचे नहीं उतरेंगे।' वे बड़े ही सरस हृदयके महात्मा थे। उनकी बोल-चाल, रहनीमें-से एक प्रकारके माधुर्यकी वर्षा होती थी। यह सभी महात्मा प्राय: प्रति सोमवारको उत्तरकाशीमें विश्वनाथजीके मन्दिरपर एकत्र होते और वेदान्त-सम्बन्धी सत्संग होता। महाराजश्रीके मुखसे वेदान्तका परम तात्पर्य सुनकर यह सभी महात्मा बहुत ही आनन्दित होते थे।

उत्तरकाशीकी यात्रामें गंगोत्तरीमें श्रीकृष्णाश्रमजी महाराज एवं जोशीमठमें अपने संन्यासगुरु ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य स्वामीश्री ब्रह्मानन्दजीके भी दर्शन हुए थे। एकबार तो बदरीनाथसे ऋषिकेश तककी यात्रा द्वारकापीठाधीश्वर शंकराचार्य स्वामीश्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थजी महाराजके साथ हुई। श्रीशंकराचार्यजीने मार्गमें विश्राम, भोजन एवं औषधका बहुत ध्यान रखा। उनका सौजन्य एवं सरलता सराहनाके योग्य है। वस्तुतः वे एक निरभिमान व्यक्ति हैं।

दक्षिणापथकी यात्रा

महाराजश्रीने दक्षिणी भारतकी यात्रा भी अनेकबार की है। संन्यास-ग्रहणसे पूर्व ही गीताप्रेसकी स्पेशल ट्रेनमें प्रयागसे द्वारका होकर दक्षिण और फिर कलकत्ता लौटे थे। साथमें श्रीमुनिलालजी (अब श्रद्धेय स्वामी सनातनदेवजी), श्रीरमाकान्तजी त्रिपाठी एवं श्रीरामनारायण शास्त्रीके होनेसे बहुत आनन्द आया। कलकत्ताके सेठ श्रीजयदयालजी कसेराने समूची यात्रामें महाराजश्रीकी सुख-सुविधाका ध्यान रखा। वे बड़े उदार और आनन्दी पुरुष थे। धनकी अत्यन्त कमी होनेपर भी वे खुले हाथसे खर्च करते थे। अपने शरीरको घोड़ा या खोल कहा करते थे। उन्होंने यह शिक्षा विशेष रूपसे धारण की थी कि 'दृश्य पदार्थमें 'मैं' 'मेरा'

होना ही अज्ञान है, तत्त्वज्ञानके द्वारा यही छूटता है।' उनके सङ्गसे यात्रापर आनन्दका रंग चढ़ गया था। साथ-साथ श्रीगोयनकाजीका सत्संग। महाराजश्री स्थान-स्थानपर वृन्दावनी अनुरागके रंगसे जनताको सराबोर कर देते। उस यात्राके माध्यमसे महाराजश्रीने सारे भारतवर्षकी आध्यात्मिक, आधिदैविक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकताका अनुभव किया।

इसी यात्रामें महाराजश्रीने पाण्डिचेरीका श्रीअरविन्द-आश्रम भी देखा और तिरुवण्णामलैमें श्रीरमण महर्षिका सत्संग भी प्राप्त किया। अरविन्द-आश्रम आधुनिक शैलीका है। जब महाराजश्री गये थे; श्रीअरविन्दके दर्शनका समय नहीं था। माताजीके दर्शन हुए। रात्रिमें सब साधकोंके साथ ध्यानमें बैठे। हल्की-फुल्की रोशनीमें देवीकी-सी वेषभूषा धारण किये माताजी सीढ़ियों पर खड़ी थीं। नलिनीकान्त गुप्त, अनिलवरण राय, दिलीपकुमार राय, अम्बालाल पुराणी आदिसे मिले। जगत्के दिव्य हो जानेपर इसकी क्या रूपरेखा होगी, इसमें रजोगुणी विकार क्या रूप ग्रहण करेंगे—इन सब विषयोंपर चर्चा हुई। कहना न होगा कि महाराजश्रीके चित्तपर वेद-शास्त्रानुकूल सनातन कर्मके इतने दृढ़ संस्कार हैं कि जो तनिक भी उसपर कटाक्ष करता है, उन्हें नहीं सुहाता। थोड़ी ही चर्चा होनेपर श्रीअनिलवरणरायने कह दिया कि 'संसारकी वस्तुओं, क्रियाओंमें परिवर्तन नहीं होगा, केवल मनुष्योंके भाव एवं दृष्टिमें ही परिवर्तन होगा।' महाराजश्रीने कहा—'यह तो ठीक है, श्रद्धापूर्वक साधनसे सब सम्भव है। साधन-क्षेत्रमें उन्नति करनेके लिए गुरुदेवके अनुग्रहपर विश्वास सर्वोपरि है।'

श्रीरमण महर्षिके आश्रममें दो बार गये। अधिकांश लोगोंके प्रश्न करनेपर महर्षि पुस्तकोंकी ओर दिखा दिया करते थे; परन्तु महाराजश्रीके प्रश्न करनेपर उन्होंने विस्तारसे उत्तर दिया। उनके उत्तरका

सार यह था—'जिसकी जाननेकी इच्छा है, वह अपनेको जान ले तो वही ब्रह्म है जिसमें इच्छा है, उसीमें अज्ञान है। इच्छा तुममें है, इसलिए आज्ञानी भी तुम्हीं हो। अज्ञान किसको है, यह मत पूछो, अपनेको जानो। तब अज्ञान अपने-आप मिट जायेगा।' ध्यानके सम्बन्धमें प्रश्न करनेपर उन्होंने कहा—'ध्यान भी अपना ही करना चाहिए। 'मैं कौन हूँ', इसका ध्यान। 'यह'से 'मैं'को अलग कर लेनेपर अनुभव करोगे कि 'मैं'को परिच्छिन्न करनेवाली कोई भी वस्तु नहीं है।' महाराजश्रीने उनके साथ बैठकर भोजन भी किया। उनकी रहनी बहुत ही सीधी-सादी थी। उनमें कोई बनावट नहीं थी। वे साधारण-से-साधारण काम जैसे, शाक सुधारना अपने हाथसे कर लेते थे। उनके जीवनमें जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख देखनेमें आता था। उनके पास रहनेवालोंमें भी दो तरहके लोग थे—एक वे जो 'मैं कौन हूँ' का अनुसन्धान करते थे, दूसरे वे जो महर्षि रमणको ही भगवान् मानकर उनकी सेवा-पूजा करते थे। महाराजश्रीको रमण महर्षि बहुत अच्छे लगे।

महाराजश्रीने संन्यासग्रहणके अनन्तर दैवीसम्पद् महामण्डलकी तीर्थयात्रा स्पेशल ट्रेनमें दो बार तीन-तीन महीने तक समग्र भारतवर्षकी यात्रा की। दोनों ही दिल्लीसे प्रारम्भ होकर दिल्लीमें समाप्त हुईं। पहली यात्रामें विरक्त महात्मा श्रीमङ्गलहरिजी साथ थे और दूसरीमें शताधिक वयके श्रीहीरानन्दजी। दोनों ही यात्रामें स्वामी श्रीभजनानन्दजी एवं सदानन्दजीने हमलोगोंकी सुख-सुविधाका बहुत सुन्दर प्रबन्ध किया। यात्री भी सत्संगी ढंगके थे। महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीशुकदेवानन्दजीके कारण प्रार्थना एवं सत्संगकी धूम थी। बड़े-बड़े नगर एवं मुख्य-मुख्य तीर्थोंमें दो-दो, तीन-तीन दिन तक रहकर व्याख्यान-प्रवचन हुए। अहिन्दीभाषी जनतामें वहाँके दुभाषिये अनुवाद करते। दक्षिणमें इतना

स्वागत-सत्कार प्राप्त हुआ और इतने भाषण हुए कि वह अलग चर्चाका विषय है।

विष्णुकाञ्चीमें काञ्ची-कामकोटि-पीठाधिपति शंकराचार्यका सत्संग हुआ। जिस समय हम लोग उनके पास गये, एक साधारण-सी चारपाईपर बैठे हुए थे। शरीरपर केवल एक लंगोटी। भस्माच्छादित भाल। उन्होंने बिना प्रश्नके स्वयं उपदेश किया। वे बोले—'उपनिषदोंमें जो आत्माके दर्शनका वर्णन है, उसका अर्थ केवल इतना ही है कि अनात्माका दर्शन नहीं करना चाहिए; क्योंकि अनात्माका दर्शन अयथार्थ दर्शन है। तत्त्वदृष्टिसे सब अपना आत्मा ही है। उसमें द्रष्टा-दृश्यका भेद नहीं है।'

इन दोनों यात्राओंमें बहुत आनन्द रहा। सभी प्रान्तोंमें कहींके गर्वनर, कहींके मुख्यमन्त्री, कहींके मेयर और जनताकी अपार भीड़ स्वागत-सत्कार करनेके लिए उपस्थित थी। पहली बार मार्गमें लोकसभाके तत्कालीन अध्यक्ष स्व० श्रीमावलङ्करजी और दूसरी बार श्रीनन्दाजी मिलने आये। सभा, व्याख्यान और जुलूसोंकी तो गणना होना ही असम्भव है। इनका विवरण दैवी सम्पद् मण्डलवालोंने प्रकाशित किया है। इसी यात्राके सिलसिलेमें ओङ्कारमान्धातामें महाराजश्रीने नर्मदामें स्नान करते समय स्वामी श्रीभजनानन्दजी आदि चार-पाँच महात्माओंको बुलाकर नर्मदा-जलसे स्वामी श्रीशुकदेवानन्दजी महाराजका अभिषेक-तिलक कर दिया और कहा कि 'हम लोग आपको महामण्डलेश्वर पदपर अभिषिक्त करते हैं।' सचमुच थोड़े ही दिनोंमें दशनामी संन्यासियोंने आपको महामण्डलेश्वर मान लिया।

वृन्दावन और ट्रस्ट

इस यात्राके पहले महाराजश्री श्रीउड़ियाबाबाजीकी उपस्थितिमें भी और उनके निर्वाणके अनन्तर भी अधिकांश वृन्दावनमें ही रहे। दो-चार महीनेके लिए कभी-कभी बाहर हो आया करते थे। प्राय: सन् ४२से ५६-५७ तकका समय व्रजभूमिमें ही व्यतीत हुआ। बाबा और साईंके समयमें तो स्नेह, भक्तिभाव एवं सत्सङ्गका इतना उत्कृष्ट वातावरण रहा कि उसे छोड़कर कहीं जानेका मन ही नहीं हुआ। दोनों समय प्रवचन, दोनों समय सत्संग। पता ही नहीं चला कि वर्षपर वर्ष कैसे बीत रहे हैं। बाबाका निर्वाण होनेके अनन्तर लोगोंने और विशेष करके श्रीहरिबाबाजीने श्रीउड़ियाबाबा ट्रस्टका ट्रस्टाधिपति महाराजश्रीको बना दिया और उन्होंने इस शर्तपर वह पद स्वीकार किया कि आश्रमकी व्यवस्थाका कोई बन्धन, प्रबन्धका कोई भार उनके ऊपर नहीं रहेगा। अब भी महाराजश्री उसके ट्रस्टाधिपति हैं। इसके सिवाय मथुराके श्रीकृष्णजन्मभूमि ट्रस्ट, ऋषिकेशके स्वर्गाश्रम ट्रस्टके ट्रस्टी तथा जोधपुर एवं पटनाके सत्संग भवनोंके ट्रस्टाधिपति हैं; परन्तु चन्दा और प्रबन्ध

सम्बन्धी कार्यका भार आपने कहीं भी नहीं लिया। वृन्दावनके आश्रममें श्रीहरिबाबाजी महाराज अधिकांश रहते हैं। प्रतिदिन कथा-संकीर्तन होता है। वृन्दावनके सैकड़ों निष्ठावान् सत्संगी प्रतिदिन लाभ उठाते हैं। महाराजश्री जब वहाँ जाते हैं, प्रातःकाल वेदान्त एवं सायंकाल भक्ति-सम्बन्धी सत्संग चलता है।

इनके अतिरिक्त महाराजश्रीने तीन ट्रस्ट स्वयं भी बनाये हैं, जिनके वे ट्रस्टाधिपति हैं—आनन्दवृन्दावन चैरीटेबल ट्रस्ट, जनताजनार्दन सेवा ट्रस्ट एवं सत्साहित्य-प्रकाशन ट्रस्ट। इसी अन्तिम ट्रस्टके द्वारा महाराजश्रीका साहित्य प्रकाशित होता है। इसके गण्यमान्य, सम्पन्न, समाजसेवी सदस्योंके उत्साह एवं सहयोगसे अबतक पच्चीससे भी अधिक आध्यात्मिक ग्रन्थोंका प्रकाशन हो चुका है और हो रहा है। हाल हीमें एक 'चिन्तामणि' नामक पत्रिका भी प्रकाशित होने लगी है।

औरैया-इटावाके श्रीप्रेमानन्द ट्रस्टके भी महाराजश्री ट्रस्टाधिपति हैं। श्रीकृष्ण-जन्मभूमि ट्रस्ट (मथुरा)के वर्तमान अध्यक्ष बिहारके राज्यपाल श्रीअनन्तशयनम् आयंगार हैं। पूज्य महाराजश्री एवं हनुमान प्रसादजी पोद्दार दोनों उपाध्यक्ष हैं। इसमें बिरला, डालमिया, गोयनका आदि सदस्य हैं। श्रीकृष्ण-जन्मभूमिमें इन दिनों पचास लाख रुपयोंकी लागतका एक भागवत-भवन बन रहा है, जिसमें सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत मार्बलपर टंकित करके लगाया जायगा। औषधालय, धर्मशाला, मन्दिर आदिका सञ्चालन यह संस्था करती है। श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके जीर्णोद्धारकी दिशामें यह ट्रस्ट श्लाघनीय कार्य कर रहा है।

वेदान्ती और भक्तोंमें समानता

महाराजश्रीकी यह विशेषता है कि वे निर्गुण ब्रह्मके निरूपणके समय शुद्ध वेदान्त एवं सगुण ब्रह्मके निरूपणके समय शुद्ध भक्तिभावका उपदेश करते हैं। भावमें ज्ञान और ज्ञानमें भावका मिश्रण नहीं करते। इसीसे जहाँ एक ओर कट्टर-से-कट्टर वेदान्ती भी उनके सत्संगको अविद्या-ग्रन्थिभेदक मानते हैं तो दूसरी ओर वृन्दावनके रसिक भी उनका निरूपण सुनकर युगलप्रेमरस-माधुरीके आस्वादनमें तन्मय हो जाते हैं।

जब वे 'वृन्दावन बिहारी मुरलीमनोहर पीताम्बरधारी साँवरे सलोने व्रजराजकुमार'— ऐसा उच्चारण करके श्यामसुन्दरका वर्णन करते हैं, तब श्रोताओंको मानो प्रत्यक्ष श्रीकृष्णके दर्शन होने लगते हैं। महाराजश्रीके सामने बहुत-से भक्त यह लालसा प्रकट करते हैं कि हमें भगवान्‌की झाँकी दिखाओ। महाराजश्री प्रेमके प्रसंगमें ऐसी बात कहते हैं कि 'प्रेमका सर्वोत्तम रूप समरसता ही है। एकाङ्गी प्रेम केवल प्रेमकी पूर्वावस्था है; क्योंकि उसमें व्याकुलता है, अभाव है और सामनेका कोई आकर्षण नहीं है। चातक, चकोर, मछली, कुमुद, कमलिनी सब इसी कक्षामें आते हैं। यह पूर्ण प्रेमका प्रकाश नहीं है। सारसमें वियोग नहीं, चक्रवाकमें संयोग नहीं, इसलिए वे भी प्रेमके अधूरे उदाहरण हैं। सम्पूर्ण प्रेमकी अभिव्यक्ति केवल राधा-कृष्णके प्रेममें ही है। अभिसारमें भी देरी और दूरी है, छद्ममें भी देरी और दूरी है। इसलिए देश, कालकी उपाधिसे युक्त यह प्रेम पूर्ण नहीं हो सकता, पूर्णताकी प्राप्तिका साधन हो सकता है। अभिसार और छद्म दोनोंमें ही प्रत्यक्ष विरहकी स्थिति है। मिलनकी अवस्थामें भी अनमिलेपनकी प्रतीति चित्तकी विपरीतता है और वह भी प्रेमका लक्षण होनेपर भी प्रेमका स्वरूप नहीं है। जो संयोगमें बढ़े और वियोगमें घटे अथवा संयोगमें घटे और वियोगमें बढ़े, वह तो प्रेम ही नहीं है। प्रेमपर देरी और दूरीकी उपाधिका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। भ्रान्ति चाहे अविद्याजन्य हो चाहे प्रेमजन्य, दुःखका ही कारण बनती है और उसमें परमाह्लादस्वरूप प्रेमकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं है। मानसमें भी न्यूनाधिक्यका भाव रहता है। भले ही क्षणिक हो; परन्तु प्रियतममें दोषका अध्यारोप भी तत्काल दुःखका ही कारण होता है। इसलिए प्रेमका उत्कृष्टरूप युगलका सामरस्य ही है। प्रेमके तरङ्गायित रूपमें कृष्ण राधा एवं राधा कृष्ण होते रहते हैं। यह कोई निर्गुण-

निष्क्रिय ब्रह्मका स्वरूप नहीं, सगुण-सक्रिय दिव्य स्पन्दनात्मक ब्रह्म है। इसलिए प्रेममें किसी प्रकारके भेदकी उपस्थिति नहीं रहती। उसकी अनिर्वचनीयता भी स्वयं प्रकाश एवं अनुभवगम्य है। इसीसे इसीको प्रेमाद्वैत अथवा रसाद्वैत कहते हैं। यह ब्रह्मशक्तिका परिणाम अथवा विक्षेप नहीं है, स्वयं सविशेष ब्रह्म ही है।'

महाराजश्रीके इस निरूपणको वृन्दावनके रसिकजनोंने खूब सुना एवं समझा है। श्रीधाम वृन्दावनमें चाहे श्रीराधा-वल्लभ सम्प्रदायके गोस्वामीपाद हों, चाहे श्रीराधारमणके, चाहे श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायके हों, चाहे श्रीरामानुज सम्प्रदायके, सभी आचार्य अपने- अपने उत्सवोंके विशेष अवसरपर महाराजश्रीको बड़े आदर और प्रेमसे बुलाते हैं और अपने-अपने सम्प्रदायके सिद्धान्त, साधन एवं रस-पद्धतिपर प्रवचन श्रवण करते है। बहुत-से रसिकजन एकान्तमें मिलकर अपने अनुभव सुनाते हैं और महाराजश्रीकी सम्मतिसे अपने-अपने भजन-साधन करते हैं। महाराजश्री सभी भावुक सम्प्रदायोंको एकरस दृष्टिसे देखते हैं, सबका आदर करते और सबसे प्रेम करते हैं। इस निरूपणके प्रसङ्गमें यदि कोई शाङ्कर वेदान्तका प्रश्न कर दे तो उसको तत्काल शाङ्कर वेदान्तकी रीतिसे उत्तर देकर फिर अपना पूर्व प्रसङ्ग चलाते हैं और शाङ्कर वेदान्तके प्रसङ्गमें यदि कोई रस-सम्बन्धी प्रश्न कर दे तो उसको रस-सम्प्रदायकी रीतिसे उत्तर देकर फिर पूर्व प्रसङ्ग चलाते हैं। अन्य विषयक प्रश्नको विक्षेप नहीं मानते और अपने निरूपणीय प्रसङ्गका परित्याग भी नहीं करते। प्रश्नोत्तर कालमें सर्वदा ही यह स्थिति देखी जाती है।

स्वामीश्री प्रेमपुरीजीके सत्संगमें

महाराजश्री 'कल्याण' परिवारमें रहते समयसे ही सन् चौंतीससे बम्बईमें आने लगे थे। भागवत-सप्ताह, कथा-व्याख्यान भी करते थे। संन्यासी होनेके पश्चात् लक्षचण्डी महायज्ञमें भी आये थे, जिसमें सहस्रों व्यक्तियोंने भागवतामृतका रसास्वादन किया था; परन्तु दैवी सम्पद् महामण्डलकी प्रथम तीर्थयात्रा स्पेशल ट्रेनमें बम्बई आना एक विलक्षण संयोग बन गया। वेदान्त सत्सङ्ग-मण्डलने प्रेमकुटीरमें प्रवचनके लिए आमन्त्रित किया। स्वामीश्री प्रेमपुरीजी महाराज 'कैलास' की महा-मण्डलेश्वरकी पदवी छोड़कर यहीं निवास कर रहे थे और अपने स्वाध्याय-प्रवचनके द्वारा लोगोंके हृदयमें पवित्रता एवं तत्त्वज्ञानका सञ्चार कर रहे थे। महाराजश्रीसे उनका मिलना तो पहले भी अनेक बार हो चुका था; परन्तु इस बार तो जैसे सचमुच मिल गये। उनकी उपस्थितिमें महाराजश्रीने वेदान्त सम्बन्धी दो-तीन प्रवचन किये। उन्होंने प्रतिपादन किया सरल भाषामें, तरलगतिसे और विरल पद्धतिमें 'प्रत्येक कृतिसाध्य प्रयत्नका चाहे कर्म हो, उपासना या योग, अन्तिम फल अनुभव ही है। परिच्छिन्न वस्तुका अनुभव होगा तो वह पुनः संस्कार, वासना और प्रयत्नका कारण बनेगा और अपरिच्छिन्न वस्तुका अनुभव होगा तो वह सदा अपरोक्ष रहेगा एवं सारे ही संस्कार, वासना तथा प्रयत्न बाधित हो जायेंगे। फिर कोई कर्तव्य शेष नहीं रहेगा।' महाराजश्रीकी प्रतिपादन-शैली स्वामीश्री प्रेमपुरीजीको बहुत ही युक्तियुक्त, प्रिय एवं आवरणभङ्ग करनेवाली लगी। उन्होंने भरी सभामें उनकी भूरि-भूरि प्रशंसाकी और जो लोग

ज्ञानके पश्चात् कर्मकी कर्तव्यताका प्रतिपादन करते हैं, इस मतका खण्डन भी किया। इस प्रकार दोनोंमें परस्पर आकर्षणकी स्थापना हुई।

उसके प्रश्चात् बम्बईमें उन्हींकी देख-रेखमें एक विशाल वेदान्त-सम्मेलनका आयोजन हुआ। सारे भारतवर्षके संन्यासी, उदासी, महन्त, मण्डलेश्वर, वेदान्तके वक्ता उपस्थिति हुए। स्वामीजीने नानावटी दम्पति वीणा-प्रवीणको वृन्दावन भेजकर महाराजश्रीको भी बुलवाया। सम्मेलनमें महाराजश्रीके अनेक भाषण हुए। 'वेदान्त हमें क्या सिखाता है?', 'वेदान्तका व्यावहारिक रूप क्या है?' आदि विषयोंपर महाराजश्रीके प्रभावशाली शास्त्र-युक्ति समन्वित, ओजस्वी, प्रसन्न-गम्भीर भाषण हुए। बम्बईकी बीस-तीस सहस्र जनता, सैकड़ों सन्त-महन्त, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके आचार्य, नेता एवं मन्त्रीगण भी मुग्ध हो गये। स्वामीश्री प्रेमपुरीजी महाराजकी प्रसन्नताका तो पारावार नहीं था। इसी अवसरपर तत्कालीन योजनामन्त्री एवं भूतपूर्व गृहमन्त्री श्रीगुलजारीलाल नन्दाने साधुओंकी संस्था बनानेका प्रस्ताव रखा। सब सन्त तो चले गये, परन्तु स्वामीजीने महाराजश्रीको रोक लिया और उनका प्रतिदिन प्रेमकुटीरमें वेदान्तपर तथा सेठ मटरूमल बाजोरियाके निवासस्थानपर श्रीमद्भागवतपर प्रवचन प्रारम्भ हुआ। जो लोग दोनों समय सुनते, वे आश्चर्य करते कि जो प्रातःकाल अध्यस्त-अधिष्ठानका इतना गम्भीर निरूपण करता है, वही सायंकाल इस प्रकार यशोदोत्सङ्गलालित मनमोहन नन्दनन्दन श्यामसुन्दरकी अनुराग माधुरीमें कैसे डुबो देता है? इस बार भी महाराजश्री थोड़े ही दिनों यहाँ रह सके, क्योंकि भारत साधु समाजकी प्रथम बैठकमें सम्मिलित होने के लिए जाना पड़ा।

स्वामीश्री प्रेमपुरीजी महाराजको महाराजश्रीके सत्संगमें इतना सुख मिला कि वे यही चाहते थे कि महाराजश्री उन्हींके पास रहें। उन्होंने

प्रेमकुटीरमें गोपीगीतकी कथा करवायी, जब कि सामान्य नियमके अनुसार वहाँ वेदान्तके सिवाय दूसरे विषयपर प्रवचन नहीं हो सकता था। प्रेम-कुटीरका प्रत्येक श्रोता इस बातका अनुभवी है कि महाराजश्रीने वहाँ मांडूक्यकारिका और श्रीमद्भागवतके प्रवचनोंमें कैसा ज्ञानका समुद्र एवं भक्तिकी मन्दाकिनी प्रवाहित की है। स्वामी प्रेमपुरीजी महाराज कहा करते थे कि 'मैं पचपन वर्षसे संन्यासी हूँ और मैंने सारे भारतवर्षमें, विशेषतया उत्तराखण्डमें जा-जाकर बड़े-बड़े महापुरुषोंका सत्संग किया है; सत्संगका रस तो मुझे अब आया है।' महाराजश्रीके प्रवचन सुनकर उनके मुखारविन्दपर भावोंकी छटा देखते ही बनती थी। महाराजश्री बार-बार वृन्दावन जाते और वे बार-बार बुलाते। विदाईके समय उनके नेत्रोंसें आँसूकी धारा बहने लगती और दूसरोंको भी रुला देते। वे महाराजश्रीसे कहते थे कि 'बम्बईको सत्संगके रंगसे सराबोर कर दो।' वे यहाँ सत्संगकी स्थायी व्यवस्था करना चाहते थे; परन्तु वह न हो सकी। उनकी उपस्थितिमें और निर्वाणप्राप्तिकेअनन्तर भी महाराजश्रीने मुम्बादेवीके मैदानमें, सुन्दरबाई हॉलमें और क्रॉस मैदानमें इतने बड़े-बड़े भागवत-सप्ताह किये हैं, जिनमें दस-दस सहस्र श्रोताओंने आनन्द लिया। बम्बईके सत्संगके सम्बन्धमें अधिक लिखना उपयुक्त नहीं है; क्योंकि इन दिनों महाराजश्री बम्बईमें ही विराजते हैं। यहाँके भिन्न-भिन्न सभा-मण्डपोंमें महीनों तक व्याख्यान, सत्संग, प्रवचन चलते रहते हैं और यहाँके वेदान्त सत्संग-मण्डल एवं सत् साहित्य-प्रकाशन ट्रस्ट बड़े प्रेमसे उसकी व्यवस्था करते रहते हैं।

भारत साधु समाजकी अध्यक्षता

महाराजश्रीकी न केवल विरक्त, अनुभवी महापुरुषोंमें ही आदर-प्रतिष्ठा है, प्रत्युत् भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके जो साधु, महन्त-मण्डलेश्वर हैं वे भी बहुत प्रेम और आदर करते हैं। इसीसे जब कोई ऐसे साधुओंकी संस्था बनती है, वे महाराजश्रीको प्रमुखता देते हैं। जब सार्वभौम साधु मण्डल बना, तब उसके कानपुर अधिवेशनमें महाराजश्री अध्यक्ष बने। श्रीकरपात्रीजी महाराजने प्रयाग कुम्भमें साधुसंघ बनाया, तो उसमें अध्यक्षके पदपर वेद भगवान् और उपाध्यक्षोंमें महाराजश्रीको भी मनोनीत किया। इस प्रकार जब दिल्लीमें भारत साधु समाजका गठन हुआ तो उसमें महाराजश्रीको उपाध्यक्ष बनाया गया। बादमें महाराजश्री कार्यकारी अध्यक्ष हुए। इसके बाद लगातार तीन वर्षतक अध्यक्ष पदपर रहे, जब कि वह पद केवल एक वर्षके लिए होता है। महाराजश्रीको उस पदपर रहना पसन्द भी नहीं था। एक वर्ष पूरा होनेपर उन्होंने त्यागपत्र भी दे दिया था; परन्तु कार्यसमितिने यह कहकर त्यागपत्र लौटा दिया कि ऐसा करनेसे तो भारत साधु समाजकी बहुत बड़ी हानि हो जायगी। यह बात समाजकी कार्यवाहीमें लिख ली गयी है।

महाराजश्री बाल्यावस्थासे ही व्यक्तिगत साधना करते रहे हैं और उसीके पक्षपोषक भी। वे व्यक्तिकी हृदय-शुद्धिसे ही सामाजिक शुद्धि मानते। अधिकांश विरक्तोंमें ही रहे हैं और त्याग, निःस्पृहता, भगवद्भक्ति एवं ब्रह्मनिष्ठाको ही साधुका सर्वोत्तम गुण मानते हैं। सभा-संस्थाओंकी दलबन्दीसे वे घबराते हैं और जहाँ तक उनका वश चले बचते भी हैं। मालवीयजीकी सनातन धर्म सभा, काशीके ब्राह्मण महासम्मेलन, महामहोपाध्याय पं० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़के वर्णाश्रम स्वराज्य संघ एवं कांग्रेसके सन् तीससे इकतालीस तकके आन्दोलनका उन्हें अनुभव है। प्रायः दलबन्दीके कारण ही संस्थाओंमें भ्रष्टाचार आता है इसलिए वे चाहते हैं कि साधक पुरुष उन संस्थाओंके दलदलमें डूबकर अपनी आध्यात्मिक उन्नति खोये नहीं। सम्बन्ध जोड़ना ही पड़े तो अनासक्त भावसे जोड़े; अपनी शक्ति, बुद्धिके अनुसार सेवा कर ले और भजनके समय सब सम्बन्धोंसे ऊपर उठ जाय।

भारत साधु समाजके इतिहासमें इस दृष्टिसे महाराजश्रीका योग एक चमत्कार ही है। उनका जयपुर अधिवेशनका भाषण भारत साधु समाजका एक प्रकारसे नीति-भाषण है। पटनाके अधिवेशनमेंजो कुछ उन्होंने कहा और शरीर रुग्ण रहते हुए भी श्रमपूर्वक जो कुछ किया, वह संस्थाको संकटसे बचानेवाला एवं उन्नतिकी ओर अग्रसर करनेवाला था। यदि सब साधुओंका सहयोग मिला तो संस्थाका भविष्य उज्ज्वल है।

सत्साहित्य-प्रकाशन ट्रस्ट

महाराजश्रीकी लेखनशक्ति किशोर अवस्थासे ही अभिव्यक्त हो गयी थी। बारह वर्षकी अवस्थामें पहला लेख काशीके साप्ताहिक 'सूर्य' में प्रकाशित हुआ था। दूसरा वहींकी मासिक पत्रिका 'आर्यमहिला'में। 'कल्याण'-परिवारमें जानेके बाद तो सहस्रों पृष्ठोंकी सृष्टि हुई। 'श्रेय', 'संकीर्तन', 'परमार्थ' आदिके लेखोंकी तो गणना ही नहीं है। गोरखपुर, जबलपुर, वृन्दावन, बम्बई आदिसे फुटकर पुस्तकें भी प्रकाशित होती रहीं। सन् इकसठमें जब माण्डूक्य-प्रवचन प्रकाशित हुआ और जिज्ञासुओंने उसकी महत्ता और आवश्यकताका मूल्यांकन किया तब यह निश्चय किया गया कि एक प्रकाशन संस्था बनायी जाय। संकल्पभरकी देर थी, बम्बईके बड़े-बड़े प्रतिष्ठित एवं सम्पन्न पुरुषोंके सहयोगसे जुलाई सन् १९६१ में सत्साहित्य-प्रकाशन ट्रस्ट रजिस्टर्ड हुआ, जिसमें देवीदयाल स्टीलवाले, मरीवाले, कामदार, खटाउ, किशनचन्द चेलाराम आदि सम्मिलित हुए। ट्रस्टने इन छः वर्षोंमें अनेक भाषाओंमें लगभग तीस पुस्तकें तथा 'आनन्दवाणी'के दस भाग प्रकाशित किये हैं। श्रीमद्भागवतका एक विशाल संस्करण भी छापनेका विचार है। सत्संगके अनेक विराट् आयोजन, जिसमें क्रॉस मैदानका भागवत-सप्ताह, के०सी० कालेजका एकादश स्कन्ध, लेडी नॉर्थकोटका वाल्मीकि रामायण एवं विष्णुपुराण बड़े उत्साहके साथ सम्पन्न किये हैं। इस संस्थाका भविष्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। आशा है, यह संस्था धर्म, भगवद्भक्ति एवं तत्त्वज्ञानके प्रचार-प्रसारकी दिशामें अपनी श्रेष्ठ भूमिका निभायेगी।

शास्त्रीजीकी भावना

हमारे सम्मान्य मित्र श्रीद्वारिकाप्रसादजी शास्त्री, जो वर्षों महाराजश्रीके साथ रहे, उनके समीप रहकर साधना की, विद्याभ्यास किया, के द्वारा लिखे संस्मरणोंके कुछ अंश इस प्रकार हैं —

महाराजश्री किसी मत-मतान्तर अथवा धर्म-समुदायके वादविशेषको स्वीकृति देकर धर्मोपदेश करनेवाले आचार्य नहीं है। वे सन्त हैं। मनुष्य-जीवनको उत्कर्षकी ओर ले जानेवाले सर्वविध आचार-विचारोंके प्रकार उनकी गुरुतामें सत्ता एवं स्फूर्ति पाते हैं। सन्तका स्वरूप-बोध करानेवाली महर्षि व्यासकी यह उक्ति-

वादवादांस्त्यजेत् तर्कान् पक्षं कं च न संश्रयेत् महाराजश्रीमें पूर्णतः चरितार्थ होती है। वे किसीके छेदन-भेदनकी प्रवृत्तिके कभी आश्रय नहीं बनते और न ही किसी वादी-प्रतिवादी अथवा विपक्षीके विरोधके विषय ही; क्योंकि अविरोधी अद्वैत परमात्म सद्वस्तु ही उनका स्वरूप है, उसीमें उनकी निष्ठा है। अद्वय परमार्थ सत्य ही उनकी क्रिया, वाणी, भाव एवं विचारों द्वारा निरन्तर अभिव्यञ्जित होता है।

'छलकते हुए आनन्द और आह्लादकी तो महाराजश्री साक्षात् प्रकट मूर्ति ही हैं। जो भी उनके निकट सम्पर्कमें आ चुका है, वह निश्चय ही उनकी पवित्र एवं उच्छल स्नेह धारामें अवगाहन किये बिना नहीं रहा। समाधि, ज्ञान एवं आनन्दका विलक्षण समन्वय महाराजश्रीके जीवनमें प्रकट है।'

उनका अल्हड़ जीवन भी देखते ही बनता है। शरीरपर ढीला-ढाला कटिवस्त्र और कभी चादर है तो कभी नहीं। बाल्यावस्थामें और

गृहस्थ-जीवनमें भी महाराजश्री अत्यन्त सादगीसे रहे। खादीका कुरता, जिसमें कभी बटन होते और कभी नहीं एवं धोती-मात्र ही उनकी वेषभूषा रही। चप्पल या जूता उन्होंने कभी नहीं पहना। तेल, साबुन आदि शरीरके प्रसाधनोंसे सदा ही अरुचि रही। अब भी यही स्थिति है। आपके कोमल एवं करुण स्वभावकी जो अमिट छाप शास्त्रीजीके मस्तिष्कपर पड़ी, उस घटनाका वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

'महाराजश्रीके गाँवके पास ही हरिजनोंके चार-पाँच घर थे। उन दिनों छुआछूतकी प्रबल भावनाके कारण हरिजनोंको ग्रामके बाहर ही रहनेके लिए स्थान मिलता था। एक दिन एक हरिजनके घरमें आग लग गयी। कोई भी सवर्ण उसे सहायता देने न पहुँचा। युवक शान्तनुका कोमल चित्त इसे सह न सका। वे सामाजिक विरोधकी परवाह किये बिना अकेले ही दौड़े और स्त्री, बच्चों तथा सामग्री आदिकी जितनी भी रक्षा कर सके, आगसे जूझकर की। उनके अदम्य उत्साह और साहसको देखकर अन्य ग्रामवासियोंने भी सहयोग किया तथा उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।'

महाराजश्रीके सम्पर्कमें आनेवाले सभी कुछ-न-कुछ लेकर जाते हैं, लौकिक-अलौकिक, व्यवहार-परमार्थ—सभी कुछ। जिज्ञासु उनसे अपनी शंकाओंका समाधन पाते हैं और भक्त आनन्दमुकुन्द, मदनमोहन, पीताम्बरधारी, श्यामसुन्दर, दशरथतनय कोशलराज-कुमार राघवेन्द्र रामभद्र अथवा आशुतोष अवढरदानी उमापति शंकर।

बाहर-भीतर एक

मेरे साथी स्वामीश्री प्रबुद्धानन्दजी सरस्वतीने एक दिन महाराजश्रीसे पूछा—'आप सभीसे अत्यधिक स्नेह करते हैं, इसका क्या कारण है?' वे बोले—'भाई, मुझे ऐसा कभी नहीं लगता कि इस देहके भीतर मैं हूँ और बाहर कोई अन्य। यदि है, तो सब अपना-आप है और नहीं, तो जैसे और अपना-आप नहीं है उसी तरह यह शरीर और मन, जिसे तुम मेरा मानते हो, यह भी मेरा नहीं। वस्तुतः एक आत्मवस्तुके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। अपने ब्रह्मपनके अज्ञानसे ही, अन्य कुछ है, ऐसी भ्रान्ति होती है और इसकी निवृत्ति ही जिज्ञासुका लक्ष्य होना चाहिए।'

ब्रह्मचारी आगे लिखते हैं—'इसीलिए महाराजश्रीके जीवनमें प्रत्यक्ष दीखता है कि चाहे कोई मूर्ख हो या विद्वान्, स्त्री हो या पुरुष, बालक या वृद्ध, निर्धन या धनी; सबके प्रति आपका समान प्रेम है। महाराजश्री नास्तिकोंको भी उतना ही प्यार करते हैं जितना किसी आस्तिक भक्त और जिज्ञासुको। जो एक बार भी आपके पावन सम्पर्कमें आ गया, वह सदा-सर्वदाके लिए आपका ही हो जाता है। प्रतिपल यही अनुभव

करता है कि यह तो मेरे जन्म-जन्मके पथ-प्रदर्शक और मित्र हैं। आपके कथा-प्रवचन श्रवणका सौभाग्य जिसे एक बार भी मिलता है वह सदाके लिए आपकी कथाका एक अच्छा श्रोता बन जाता है। आपके सत्संगकी एक विशेषता यह भी है कि उसमें पुरुषोंकी संख्या स्त्रियोंसे हमेशा बहुत अधिक होती है। उसमें किशोर और युवक भी बड़ी संख्यामें सम्मिलित होते हैं।

महाराजश्री भक्तोंमें भक्त और ज्ञानीके लिए ज्ञानी हैं। कर्मीको आपमें कर्मठताके दर्शन होते हैं तो योगी आपके सहज, शान्त, धीर, गम्भीर स्वभावसे प्रेरणा पाता है। जिज्ञासुके आप सर्वस्व ही हैं। आपके समझानेकी शैली अत्यन्त सरल, युक्तियुक्त और हृदयस्पर्शी होती है। आपके विचारोंका गाम्भीर्य, चित्तकी समाधि और जीवनकी प्रेममयता देखने योग्य है। दूर रहनेवालोंको लगता है कि आप बड़े ठाठ-बाटसे रहते हैं; परन्तु आपके जीवनमें जो सादगी और सरलता है उसको कोई पास रहकर ही जान सकता है। जो आपके जितने अधिक निकट आता है वह आपको देखकर उतना ही अधिक आश्चर्य प्रकट करता है। उसको आप ज्ञान, वैराग्य और आनन्दके मूर्तिमान् स्वरूप ही मालूम पड़ते हैं। वास्तवमें आपके शरीरके कण-कण, रोम रोम, रग-रग विश्वहित, भगवत्प्रेम और ब्रह्मात्मैक्यज्ञानसे परिपूर्ण हैं। अधिक क्या कहें, आपका जीवन ब्रह्मका जीवन है। वह इतना निर्भय, उन्मुक्त और उदार है कि जब मन-ही-मन उसपर विचार करते हैं तब हम मानो आश्चर्य-सागरमें उन्मज्जन-निमज्जन करने लगते हैं।'

शुद्धि और ज्ञान

महाराजश्री कहते हैं—शरीरसे सेवा-श्रम, इन्द्रियोंका संयम, मनमें सद्भावना, बुद्धिमें विवेक और अहं-का निरहं होना ही साधनाकी सर्वोपरि अवस्था है। सिद्ध वस्तु साधन-साध्य नहीं है। साधनके द्वारा अन्तःकरणके मल और विक्षेपरूप दोषोंके निवृत्त होनेपर आवरण-भंग तो तत्त्वमसि आदि महावाक्यजन्य चरमावृत्ति द्वारा ही होता है। जो परमात्मा अभी, यहीं और प्रत्यक्‌चैतन्यके रूपमें ही विद्यमान है, उसकी अप्राप्तिका कारण है अज्ञान और उसकी निवृत्ति एकमात्र ब्रह्मात्मैक्यज्ञानसे ही हो सकती है। अन्य सारे परम्परा-प्राप्त बहिरंग और अन्तरंग साधन इस ज्ञानके उदयमें सहायक होनेसे ही उपादेय हैं। साधनाके द्वारा व्यक्तिगत परमोत्कर्ष होता है और सिद्ध वस्तुका बोध होनेपर परिच्छिन्न व्यक्तित्व उनकी समष्टि और उनकी बीजावस्था अव्यक्त तथा उनमें पड़ा हुआ आभास—सब बाधित हो जाता है; क्योंकि सम्पूर्ण परिच्छिन्नताओं और उनके अभावसे उपलक्षित ब्रह्म अपनी आत्मा ही है—इस ऐक्यज्ञानको ब्रह्मज्ञान कहते हैं।

बालुका ब्रह्म

स्वामीजी, सत्संगके समय मौज आनेपर श्रीउड़ियाबाबाजीकी एक बात बड़े प्रेमसे बताते हैं। एक बार कर्णवासमें बाबाके साथ गंगाजीकी बालुकापर बैठे हुए थे। सत्संग हो रहा था। बाबाने दोनों हाथोंसे गंगाजीकी बालुका उठायी और कहा—'शान्तनु! जबतक यह बालुका साक्षात् ब्रह्म न मालूम पड़े तबतक समझना कि अभी ब्रह्मज्ञान अधूरा ही है। ब्रह्मबोध होनेपर तो ब्रह्मसे पृथक्, एक तृण, एक कण भी नहीं है। विवेक करते समय ब्रह्म स्थूल, सूक्ष्म, कारण—सबसे विलक्षण है, यह बात कही जाती है; परन्तु ब्रह्मबोध होनेपर तो एक अद्वय आत्मवस्तुके अतिरिक्त न ईश्वर ही है और न जगत् ही। ईश्वरकी अन्यता, जगत्का सत्यत्व और आत्माकी परिच्छिन्नता, यह तीनों ही ब्रह्मबोधसे बाधित हो जाते हैं।' इसलिए महाराजश्री प्राय: कहा करते हैं कि 'यह जो कुछ दीख रहा है सो सब सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही है। यह सम्पूर्ण सृष्टि वृन्दावन है। समस्त स्त्रीवाचक वस्तुएँ राधा और पुरुषवाचक वस्तुएँ कृष्ण हैं। इस सृष्टिके विशाल रंगमञ्चपर जिधर देखो उधर राधा-कृष्ण युगलसरकारका ही मिलन—दिव्य विहार हो रहा है।'

मन हटा लो

महाराजश्री भावुक और विचारवान् दोनों प्रकारके साधकोंसे कहा करते हैं कि 'भाई! चाहे भावसे बिठाओ चाहे विचारसे; परन्तु बैठाओ अपने हृदयमें परमात्माको ही।'

जब कोई साधक आपसे ईश्वरप्राप्तिके सम्बन्धमें पूछता है, तब आप उससे बड़े प्रेमसे कहते हैं, 'भाई! तुमको जो-जो ईश्वर न मालूम पड़े उस-उसकी ओरसे अपने मनको हटा लो। इस प्रकार मन हटाते-हटाते जिसे छोड़ा न जा सके, उसीका नाम ईश्वर है। संसार तो वह है जिसको हम पकड़कर रखना चाहें और प्रयत्न करनेपर भी जो हमारी पकड़में न आ सके, अपने-आप सरकता-छूटता जाय और जिसे छोड़ना चाहें, फिर भी जो न छूटे, वह ईश्वर है।'

पवित्र गरीबी

महाराजश्री साधक जीवनकी सफलता और पूर्णताके लिए दो बातें विशेष रूपसे बतलाते हैं—(१) पवित्रता अर्थात् जीवनमें काम-क्रोधादि दोषोंका अभाव और सदाचार, संयम आदि गुणोंका होना तथा (२) गरीबी अर्थात् सादगी। कम-से-कममें जीवन-निर्वाह। आप कहते हैं कि ये दो बातें साधकको ईश्वरके बहुत निकट ले जाती हैं।

ठोस ईश्वर

स्वामीजी यह बात बड़ी युक्तिपूर्वक समझाते हैं कि प्राणिमात्रका इष्ट एकमात्र परमात्मा ही है। नास्तिक भी असलमें ईश्वरको ही चाहता है; परन्तु वह इस बात को जानता नहीं है कि ईश्वरको ही चाहता हूँ। ईश्वर केवल भावना या कल्पनाकी वस्तु नहीं है, सर्वथा ठोस है। सब समय, सब जगह, सब रूपोंमें रहनेवाला जो अविनाशी ज्ञानस्वरूप आनन्दतत्त्व है उसीको शास्त्र ईश्वर कहते हैं। आजकल जो लोग ईश्वर शब्दसे चिढ़ते हैं, वे ईश्वर शब्दका ठीक-ठीक अर्थ मालूम न होनेसे ही चिढ़ते हैं। यदि उनको ईश्वर शब्दका ठीक-ठीक अर्थ मालूम हो जाय, तब वे समझेंगे कि सबका इष्ट एकमात्र ईश्वर ही है।

साधक जहाँ है, जिस स्थितिमें है उसे वहीं उसी स्थितिमें आप ईश्वर-दर्शन करा देते हैं; क्योंकि आपकी दृष्टिमें यह सृष्टि ज्यों-की-त्यों निर्विकार सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही है। महाराजश्री कहते हैं कि 'अज्ञात आत्माका नाम ब्रह्म है और ज्ञात ब्रह्म ही आत्मा है।' ऐसे सर्वाधिष्ठान सर्वावभासक स्वयंप्रकाश सच्चिदानन्दघन आत्मस्वरूप अनुग्रह-विग्रह गुरुदेवके चरणकमलोंमें हम बार-बार प्रणाम करते हैं।

महाराजश्रीके सत्संगप्रेमी एक भक्तके उद्‌गार :

नियमके पक्के

नियम-पालन करनेके विषयमें महाराजश्रीके विचार बहुत दृढ़ हैं। आपका कहना है कि मनुष्यको अपने नियमोंका पालन थोड़ा कष्ट सहकर भी करना पड़े तो करना चाहिए। ये स्वयं भी अपनी कथाका नियम नहीं तोड़ते। चातुर्मास्य आदिमें एक बार कथाका नियम लेनेपर भले ही कमजोरी और थकान हो, रक्तचाप बढ़ा हो या ज्वर हो, स्वामीजी अपना नियम नहीं तोड़ते। यहाँ तक भी देखा गया है कि एक दिन इन्हें पन्द्रह-पन्द्रह मिनटके अन्तरपर दस्त लग रहे थे, तब भी ये कथाके लिए समयपर गये और प्रतिदिनकी तरह कथा की। आपका कहना है कि जब मनुष्य नियम-पालनमें दृढ़ रहता है तो सारी बाधाएँ स्वयं मिट जाती हैं। एक बार श्रीहरिबाबाजीने वृन्दावनमें दोनों समय एक वर्ष तक इनसे भागवतकी कथा सुननेका नियम लिया। वे प्रतिदिन निश्चित समयपर ही सुनना पसन्द करते थे। स्वामीजीने सालभरतक एक मिनटकी देर-सबेर किये बिना इनको दोनों समय नियमपूर्वक कथा सुनायी।

सच है, नियम-निष्ठामें विघ्न-निवारणकी असाधारण शक्ति है।

बड़प्पन बिसर गया

निरभिमानता महाराजश्रीका सहज स्वरूप है। अपने बड़प्पनका कोई विचार किये बिना ही ये बड़े-छोटे, अमीर-गरीब, साफ-गन्दे, शिक्षित-अशिक्षित और ब्राह्मण-शूद्र सबसे सहर्ष मिलते हैं और सबको प्रेम देते हैं। गरीब-से-गरीबके भी घर जानेमें, कहीं भी आसनके ऊँचे और नीचेपनका ख्याल किये बिना बैठनेमें इन्हें कोई संकोच या हिचकिचाहट नहीं। मैंने अपनी आँखोंसे देखा है कि वृन्दावनमें एक बार एक गरीब व्यक्ति इनसे मिलने आया। गर्मीके दिन, लगभग ग्यारहका समय था। उसका शरीर पसीनेसे भींगा हुआ था। ज्योंही उसने प्रणाम किया इन्होंने उठाकर उसे छातीसे लगा लिया। (उस समय देखनेसे ऐसा लग रहा था, जैसे वह हिचकिचा रहा हो और ये जबरदस्ती उसे खींचे जा रह हों।) बादमें मैंने महाराजश्रीसे कहा—'समझमें नहीं आता, कैसे आपने इस तरह पसीनेसे लथपथ व्यक्तिको अपनी छातीसे लगा लिया?' उत्तर मिला—'अरे भाई, मुझे तो इसका ख्याल ही अब आया है, जब तुमने बताया है। मैं तो उसके प्रेमको देख रहा था, कितना कष्ट उठाकर इतनी धूपमें मुझसे मिलने आया था।' जिसको सबके हृदयमें प्रेमस्वरूप आनन्द मुकुन्दका दर्शन हो रहा हो, उसका ऐसा व्यवहार स्वाभाविक ही है।

केवल प्रेमपर दृष्टि

वर्षों पहलेकी एक बात है—वृन्दावनमें आश्रमके समीप दावानलकुण्डकी एक गुफामें एक बहुत ही विरक्त रैदास (चमार) भक्त रहता था। सर्वथा मौन रहना, माँगकर खाना और जंगलमें सोना ही उसकी रहनी थी। इसी बीच स्वामीजीसे उसका इतना प्रेम हो गया कि रातमें जब सब लोग सो जाते (दिनमें लोग उसे आने नहीं देते थे) तब चुपकेसे आकर वह इनके पाँव दबाने लगता। उसके पास महात्मा रैदासजीकी हस्तलिखित एक पुस्तक थी, जिसे वह अपनी जटाओंमें छिपाकर रखता और किसीको दिखलाता नहीं था। कभी-कभी वह यह पुस्तक महाराजश्रीसे पढ़वाता। इनके साथ रहनेवाले ब्रह्मचारी लोग उस महात्माको कुटियामें देख लेते तो बहुत डाँटते-डपटते और कभी-कभी तो उसे बलपूर्वक उठाकर बाहर भी फेंक आते। इतना तिरस्कार होनेपर भी वह अमानी अवसर मिलनेपर बार-बार आता। कभी-कभी रातमें आकर वह महाराजश्रीकी छातीपर अपना सिर भी रख दिया करता; परन्तु स्वामीजीने कभी उसे कुछ कहा नहीं; प्रत्युत अपना अहैतुक स्नेह ही दिया। इसके इस स्वभावके कारण साथमें रहनेवाले सेवक कभी-कभी नाराज भी होते थे। महात्माओंके लोकोत्तर हृदयका पता सर्वसाधारण को कैसे चले?

क्रोध-अक्रोध

क्रोध स्वामीजीको छू तक नहीं गया है। क्रोध इनसे दूर रहता है और ये क्रोधसे। आप कहते हैं—'जिस हृदयमें क्रोधकी भट्ठी जल रही हो उसमें क्षीरसागर, शेषशय्या अथवा हिमालयमें रहनेवाले भगवान् कैसे बसेंगे।' ये स्वयं तो कभी किसीपर क्रोध करते नहीं, इनके सामने भी कभी कोई दूसरा किसीपर क्रोध करता है तो इन्हें बुखार आ जाता है। बहुत पहलेकी बात है, इनके एक घनिष्ठ मित्र थे। उनका स्वभाव थोड़ा उग्र था। लोगोंसे बहुधा उलझते रहते थे। उनके इस स्वभावके

कारण मित्रता कहीं टूट न जाय, इसलिए उनसे आपने कहा—'देखो, जब मुझसे मित्रता तोड़नी हो तभी मेरे सामने क्रोध करना, अन्यथा नहीं।' इन्हें किसीका भी किसीपर किया क्रोध जरा भी सहन नहीं होता। यों महाराजश्रीके जीवनमें भी एक बार क्रोध देखा गया है। वह घटना भी बहुत मजेदार है। दादाजीसे एक बार कोई चीज खो गयी। जब वे ढूँढ़कर हार गये और नहीं मिली तब उन्होंने हनुमानजीके लिए पाँच रुपयेका प्रसाद मान लिया। चीज मिल गयी। बादमें जब स्वामीजीको यह बात मालूम पड़ी तब इन्होंने दादाजीसे कहा कि 'तुमने रुपयेकी मानता क्यों मानी?' इनका अभिप्राय था कि साधुको रुपयेकी मानता नहीं माननी चाहिए। यदि मानना हो तो व्रत, जप, पूजा-पाठ, परिक्रमा आदि तप:साध्य मानता करनी चाहिए; परन्तु दादाजीकी समझमें यह नहीं आकर यह आया कि ये अपने रुपये खर्च करनेके लिए मना कर रहे हैं, अत: वे आश्रमकी बन रही धर्मशालामें जाकर ईंटें तोड़नेका काम यह सोचकर करने लगे कि इस मजदूरीसे जो पैसे आयेंगे, उससे प्रसाद चढ़ायेंगे। उस समय महाराजश्रीने बड़े क्रोधसे जाकर दादाजीका गला पकड़ लिया और कहा—'अगर ऐसा किया तो खैर नहीं (यहीं) मार डालूँगा। बेवकूफ! मैं पैसा खर्च करनेके लिए नहीं रोकता था। साधुको पैसेसे होनेवाले काम नहीं करने चाहिए, इसलिए रोकता था।' फिर तो दादाजी शान्त हो गये और ये तो शान्त थे ही। थोड़ी देर बाद इन्होंने जो स्नेह दिया, उसका स्मरण करके दादाजी अब भी भावविभोर हो जाते हैं। महापुरुषोंका क्रोध भी कल्याणकारी होता है।

पैसे-पैसेका हिसाब

हिसाब-किताबके मामलेंमें महाराजश्री बहुत दृढ़ हैं। ऐसा होनेपर भी कहाँसे क्या कुछ आता है, इसका पता ये नहीं रखते; पर जो हिसाब सामने होता है उसमें ये पैसे-पैसेका ध्यान रखते हैं। अपने पास रहनेवालोंको किसीका एक पैसा भी अधिक नहीं रखने देते। अभी हालकी ही बात है कि किसीको एक बिलके पैसे देने थे। रुपयेके अलावा कुछ नये पैसे देनेवालेके पास नहीं थे, अतः उसने एक रुपया दे दिया; पर आपने रुपया नहीं रक्खा। यद्यपि उनके पास भी इकट्ठे इतने पैसे नहीं थे, फिर भी इन्होंने यहाँ-वहाँसे इकट्ठे कराके पूरे पैसे वापस करा दिये। वे कहते हैं—'हिसाबकी स्वच्छतासे जीवन एवं मनमें भी स्वच्छता-पवित्रताका सञ्चार होता है।'

प्रतिग्रहका त्याग

महाराजश्री नौ-दस वर्षकी अवस्थासे ही अपने पितामहके साथ अपने शिष्योंके लिए दुर्गापाठ आदि अनुष्ठान किया करते थे। ज्योतिष और कर्मकाण्डमें भी निपुणता थी। पितामहकी मृत्युके अनन्तर एक बार बहुत-से शिष्योंका पाठ लेकर विन्ध्याचल गये। वहाँ पाठ करते समय यह विचार उदय हुआ कि जिस पाठसे हम दूसरोंके हित-साधनका संकल्प करते हैं, उसको हम अपने हित-साधनमें ही क्यों न लगायें? तबसे ही दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब हम दूसरोंके लिए या दक्षिणाके लिए कोई अनुष्ठान नहीं करेंगे।

स्वामीजी गृहस्थजीवनमें ही अपने वंशपरम्परागत शिष्योंसे दक्षिणा लेना छोड़ दिया था। बात यह हुई कि महाराजश्रीके अभिन्न मित्र कानूनगो साहब श्री झगरूसिंह थे। उन्हें अड़तीस पटवारियोंसे प्रतिमाह दो-दो रुपये मिला करते थे। जब उनके मनमें वैराग्य उदय हुआ तब उनके मनमें बड़ी ग्लानि हुई और उसे अवैध घूस समझकर छोड़ दिया। इस घटनाका महाराजश्रीके चित्तपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपने पाँवपर उसी प्रकार दक्षिणा चढ़वाना छोड़ दिया। कभी कोई घरके लोगोंको कुछ दे आता तो वे मना नहीं करते थे। वे उन्हें तब रोकते यदि मनमें ममता अथवा सम्बन्धकी भावना होती। वह तो पहले ही टूट चुकी थी। कहते थे कि हम उनके लाभको रोकनेवाले कौन हैं? इससे सालमें जो हजार रुपयेकी आमदनी होती थी वह स्वाभाविक ही कम हो गयी और फिर इन्होंने अपने बचपनसे ही यह नियम बना लिया था कि चाहे जैसी भी परिस्थिति होगी, कभी किसीसे ऋण नहीं लेंगे। इन दो नियमोंके कारण इन्हें कभी-कभी आर्थिक कठिनाइयाँ आयीं, परन्तु बिना विचलित हुए सारी तकलीफें इन्होंने सहीं और दृढ़तापूर्वक नियम निबाहे। घरवालोंको भी मानसिक कष्ट तो था, पर जैसे-तैसे खेतीबारीसे उनका काम चल जाता था। एक बार स्वामी श्रीयोगानन्दजी महाराजने महाराजश्रीसे एक लकड़ीकी चौकी मँगवायी। उस समय इनके पास रुपये नहीं थे। अतः आपने उनसे स्पष्ट कह दिया कि 'इस समय रुपये मेरे पास हैं नहीं और कर्ज मैं लेता नहीं, अतः अभी मैं चौकी लाने में असमर्थ हूँ। साधकके जीवनमें धनके प्रति महत्त्वबुद्धि नहीं होनी चाहिए।

अवैतनिक कार्य

उसके बाद जब स्वामीजी गोरखपुर अखण्ड संकीर्तनके प्रसंगमें गये और 'कल्याण'के सम्पादन-विभागमें काम करने लगे, तब भी सात वर्ष तक लगातार काम करनेपर भी वहाँसे वेतनके रूपमें इन्होंने कुछ नहीं लिया, यद्यपि काम हुए बहुत बड़े-बड़े। जब कभी उनके कामसे आप बाहर जाते, तब वे लोग इनके साथ सौ-दो-सौ रुपये रख देते और लौटनेपर जो कुछ बच रहता, ये उन्हें वापस कर देते थे। कैसे-क्या खर्च हुआ, यह हिसाब स्वामीजी कभी नहीं रखते थे। जो बच रहा, वही हिसाब। इसका कारण अपने खर्चके औचित्यपर विश्वास था।

एक दिव्य घटना

महाराजश्री कभी-कभी यह बात सुनाते हैं—'मैं और सुदर्शन सिंह 'चक्र' दोनों उड़ीसा और आन्ध्रकी पैदल यात्रा समाप्त करके बिहारमें भ्रमण कर रहे थे। तपोवनसे राजगिरि आये। वहाँसे प्रातःकाल चलकर दोपहरमें बिहारशरीफमें भोजन किया। साथमें भोजन करनेकी कोई व्यवस्था नहीं थी, परन्तु वहाँ छात्रावस्थाके मित्र व्याकरणाचार्य 'शाहीजी' अचानक मिल गये और उन्होंने बड़े प्रेमसे सब व्यवस्था कर दी। दोपहरके बाद चलनेपर कहीं भी ठहरनेके लिए कोई स्थान नहीं मिला। लोग सड़कपर, पेड़के नीचे सोने नहीं देते। गाँवमें मन्दिरसे धर्मशाला और धर्मशालासे कचहरी भेज देते। अन्तमें हारकर बिहार लाइट रेलवेके किसी स्टेशनपर रात्रिको ग्यारह बजेके लगभग पहुँचे। गाड़ियाँ आ-जा चुकी थीं। आस-पास कोई दूकान-मकान नहीं थे। मीलों तक बस्ती नहीं थी। यह घटना सन् १९३०-३१ की है। थकानसे चूर थे। खाने-पीनेकी कोई विधि नहीं थी। सब लोग सो गये थे। मुसाफिर खानेमें चादर बिछाकर लेटते ही दो किशोर उपस्थित हुए। गौरवर्ण, स्वच्छ वस्त्र। रात्रिमें भी उनके शरीरसे दीप्ति निकल रही थी। उन्होंने पूछा—'कुछ खाओगे?' हमने कहा—'यहाँ क्या मिल सकता है?' दोनोंने पाँच मिनटमें ही दो दोनोंमें भरकर खोआ ला दिये। हमने पूछा—'तुम दोनों कहाँ रहते हो?' वे बोले—'यहीं।' क्षणभरमें चले गये। दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर हम लोगोंने उनका पता लगाया; परन्तु वहाँ आस-पास मीलोंमें न कोई गृहस्थ था और न वैसे बालक ही। इसको ईश्वरीय चमत्कारके सिवाय और क्या कहा जा सकता है?

भगवद्दर्शन

महाराजश्रीको जब आध्यात्मिक लगन लगी तब सबसे पहले स्वामी योगानन्दजीके पास ही गये। उन्होंने सबसे पहले गायत्री पुरश्चरण करवाया; फिर शुभ मुहूर्तमें वेधमयी दीक्षाकी रीतिसे गोपीजनवल्लभ मन्त्रका उपदेश दिया। उपदेशके अन्तमें महाराजश्रीके सिरपर हाथ रखकर उन्होंने स्वयं अष्टोत्तरशत मन्त्रका जप किया और कहा—अब तुम संसार-बन्धनसे मुक्त हो; केवल भजनानन्दके लिए जप किया करो।' महाराजश्री दर्शनकी लालसासे जप करने लगे। इसी जपके समय परमहंसजीने आकर जपकी पद्धतिमें संशोधन किया, जो 'कृष्ण-कृष्णमें उच्चारणसे कृष्णप्राप्ति' शीर्षक लेखमें प्रकाशित हो चुका है।

अनुष्ठान पूरा होनेपर गंगास्नान करते समय माला कौआ उठाकर ले गया। गृहत्यागका प्रयत्न भी असफल हो गया। जब वे बैठककी दालानमें बैठकर व्याकुल हो रहे थे, अपनी विफलतापर आत्मग्लानिकी ज्वालामें जल रह थे और सोच रहे थे कि 'हाय-हाय! इस शरीरसे भगवान्‌का दर्शन बिलकुल न हुआ और न होगा। यह शरीर व्यर्थ है।' उसी समय वह बन्द कमरा जो अन्धकारमय था, प्रकाशसे भर गया। महाराजश्रीने

आँख मलकर देख लिया कि मैं जाग रहा हूँ और अपने पलंगपर बैठा हूँ। उसी समय सामने धरतीसे कुछ ऊपर एक दिव्य किशोर प्रकट हुआ। उसके मुखपर मुस्कान थी, नेत्रोंमें प्रेम, अधरोंपर बाँसुरी। शरीरपर कोई वस्त्र नहीं था। वस्त्र और आभूषणोंके स्थानपर पुष्पमालाएँ थीं। मुकुट भी पुष्पोंका ही था और नुपूर भी पुष्पोंके। पुष्पोंका शृंगार इस ढंगसे किया गया था कि जैसे कन्धेपर पीताम्बर हो और कटिभागमें जाँघिया। वह किशोर कभी बायें, कभी दायें और कभी सम्मुख आकर खड़ा होता तथा मुस्कराकर देखता था।

महाराजश्रीने साष्टांग प्रणाम करनेका प्रयत्न किया तो शरीर टस-से-मस ने हुआ, सिर नहीं झुका, हाथ नहीं जुड़े, वाणी बन्द हो गयी। वे देख रहे थे और वह मुस्करा रहा था। अन्तमें उस दिव्य किशोरने कहा कि 'सब मैं ही मैं हूँ। यह जो जगत् दीखता है सो भी मैं हूँ। मैं और तुम दो नहीं, एक हैं। मैं तुम और तुम मैं। हमारा कभी वियोग नहीं है, संयोग भी नहीं है; सदा एकरस मिलन है।' वह किशोर अन्तर्धान हो गया और उसके साथ ही वह दिव्य प्रकाश भी लुप्त हो गया।

महाराजश्री कुछ समयके बाद बाहर निकले। माताजी और पण्डित अक्षयवट त्रिपाठी बाहर बारामदेमें बैठे हुए थे। महाराजश्री ऐसे परमानन्दमें मग्न हो रहे थे और उनके रोम-रामेसे आनन्दकी धारा प्रवाहित हो रही थी कि उन्होंने तुरन्त प्रकट कर दिया कि मुझे भगवान्के दर्शन हो गये।

उसके बाद ही महाराजश्रीने वेदान्तके ग्रन्थोंका स्वाध्याय किया और वेदान्त अपना आवरण रहित अर्थ प्रकाशित करने लगा।

सप्ताहकी दक्षिणा

महाराजश्रीने श्रीमद्भागवतके अनेक सप्ताह किये, परन्तु उनमें कभी, किसीसे, किसी प्रकारकी कोई दक्षिणा नहीं ली, यद्यपि नियमसे श्रवण करनेवाले श्रोताओंमें भारतवर्षके कई प्रसिद्ध करोड़पति भी थे और वे कुछ-न-कुछ देना ही चाहते थे, पर इन्होंने अपना नियम (श्रीमद्भागवत-सप्ताह करनेपर कुछ नहीं लेनेका) नहीं तोड़ा। नियमके इतने कट्टर होनेपर भी आपने पूज्य स्वामीश्री प्रेमपुरीजी महाराजके प्रेमभरे आग्रहसे उनकी प्रसन्नताके लिए और उनकी सत्संगभवनकी योजनाको पूर्ण करनेके लिए यह नियम तोड़ दिया। इस योजनाकी पूर्तिके लिए मुम्बादेवी मैदानमें श्रीमद्भागवत सप्ताहका आयोजन किया गया और उसमें यह घोषणा की गयी कि सप्ताहमें प्राप्त भेंटसे वेदान्त सत्संगमण्डल सत्संग-भवनका निर्माण करेगा। सप्ताह खूब धूम-धामसे हुआ और उसमें प्राप्त सब-के-सब ५०-६० हजार रुपये वेदान्त सत्संगमण्डलको ज्यों-के-त्यों दे दिये गये; परन्तु खेद है, मण्डलकी वह योजना ब्रह्मलीन स्वामीश्री प्रेमपुरीजी महाराजके जीवनकालमें पूरी न हो सकी। उनके देहावसानके बाद मण्डलवालोंने अधिकांश पैसे जिनसे आये थे, उन्हें लौटा दिये, शेष निधि मण्डलवालोंके संरक्षणमें ही है। उस निधिसे महाराजश्रीका कोई सम्बन्ध नहीं है। स्वामीश्री प्रेमपुरीजी महाराजके अत्यन्त प्रेमसे ही, जीवनमें एकबार, केवल एकबार इन्होंने अपने भागवत-सप्ताहके समय कुछ न लेनेके नियमको तोड़ा।

सप्ताहमें किसी भी प्रकारकी भेंट न लेनेके कई उदाहरण हैं। कुछ वर्ष पूर्व खटाउ दम्पति द्वारा आयोजित, सुन्दरबाई हॉलमें श्रीमद्भागवत-सप्ताह हुआ। एक दिन किसीने अनजानमें वहाँ कुछ चढ़ा दिया। तुरन्त ही माइक्रोफोनपर घोषणा करके भेंट उसे वापस लौटा दी गयी। स्वामीजीके इसी नियमके कारण, एकबार वृन्दावनमें सप्ताहमें जब किसीने सौ रुपये चढ़ा दिये तब श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजने भरी सभामें अपने हाथसे उठाकर उन्हें फेंक दिया। इसी तरह किशनपुर (देहरादून)के सप्ताहमें किसीने सवा सौ रुपये चढ़ाये, श्रीआनन्दमयी माँने तत्काल ही उन्हें गरीबोंमें बाँट दिया।

लोगोंसे दक्षिणाके रूपमें स्वामीजी जो माँगते हैं वह है-

१. कम-से-कम पाँच मिनटका समय भगवान्के लिए निकाला जाय।
२. भगवन्नामकी एक-दो माला अवश्य फेरी जायँ।
३. अपने घरमें कम-से-कम एक हाथ स्थान ठाकुरजीके लिए हो।
४. कम-से-कम एक पैसा ठाकुरजीपर न्यौछावर करके प्रतिदिन किसी गरीबको दिया जाय, और
५. ठाकुरजीकी कुछ-न-कुछ सेवा, जैसे फूल चढ़ाना, चन्दन लगाना, भोग लगाना अपने हाथोंसे अवश्य हो।

महाराजश्री बहुत गौरवसे कहते हैं कि 'मुझे इसके सिवाय और किसीसे कुछ नहीं चाहिए। जो मुझे कुछ देना चाहता है, वह मुझे मेरा माँगा हुआ दे और यही मेरे लिए पर्याप्त दक्षिणा है।'

दूसरोंके सुखका ध्यान

एक बात जो महाराजश्रीमें प्रत्यक्ष दीखती है वह यह है कि ये हर समय ध्यान रखते हैं कि इनकी किसी भी क्रियासे, किसीको भी जरा-सा भी कष्ट न हो, भले ही स्वयं इनको उससे कष्ट हो जाय। जरा-सा ध्यान देनेसे हम यह इनके प्रतिदिनके जीवनमें देख सकते हैं। उदाहरणार्थ—इनके पास कभी कोई सोया रहता है तो ये बगैर रोशनी किये इतने धीरेसे उठते हैं कि आहट न हो और सोया हुआ व्यक्ति जग न जाय।

खानेका समय न हो, मन न हो और अनुकूल भी न हो तो भी, सामनेवालेका दिल दुःख न जाय, वह अपनेको अपमानित न समझ बैठे, इस ख्यालसे खा लेते हैं। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह मिनटके अन्तरपर लोग आते रहते हैं और कुछ-न-कुछ खानेको दे ही देते हैं, तब यह जानते हुए भी कि ऐसा करनेसे पेट खराब, शरीर अवस्थ हो जायगा, दादाजीकी नाराजगी सहकर भी खा लेते। क्यों? औरोंकी खुशीके लिए ही तो।

थके हों, रक्तचाप बढ़ा हो और आराम करना बहुत जरूरी हो अथवा सोये हुए ही क्यों न हों, कोई आ जाता है तो उससे मिल लेते हैं।

अपनेको किसी प्रकारका कोई मानसिक अथवा शारीरिक कष्ट हो तो जबतक अत्यावश्यक नहीं हो जाता, तबतक किसीको नहीं बताते; स्वयं उसे सहते रहते हैं। एकबार बदरीनाथकी यात्रा कर रहे थे। मठ चट्टीपर अँधेरेमें शौचके लिए गये। डेढ़-दो-मनका पत्थर पैरपर गिर गया। हड्डीमें चोट लगी; परन्तु किसीको बतलाया नहीं। साथमें सात-आठ सेवक थे, यात्रा पूरी करके वृन्दावन लौटनेपर ही बतलाया। हड्डीकी गाँठ अबतक बनी हुई है। इस यात्राको चौदह वर्ष हो गये।

श्रीमद्भागवत-सप्ताह करना अति कष्टदायी है, पर फिर भी जब कोई आपसे आग्रह करता है तब ये उसे टाल नहीं सकते, मान लेते हैं। उस समय तो जो तकलीफ होती है सो होती हैं, बादमें भी इन्हें उतनी शक्ति संचित करनेमें महीनों लग जाते हैं।

महाराजश्रीका हृदय इतना कोमल है कि वे किसीकी तकलीफ सुन नहीं सकते। इस प्रसंगकी एक बहुत पुरानी बात है, किसीने इनको अपना दुःख सुनाया। उसे सुननेके बाद उसका दुःख किस तरह मिटाया जाय, इस चिन्तासे आपको इतना कष्ट हुआ जितना आजतक कभी नहीं

हुआ। और उसी समय, उसके दुःखके कारण इनके अधिकांश बाल सफेद हो गये।

कई बार ऐसा भी होता है कि इनकी ही सुनाई हुई बात लोग इन्हें अपनी बनाकर सुनाते हैं। ऐसे-में भी उसे सहर्ष, उत्सुकता लिये हुए ही सुनते हैं, जैसे बिलकुल नयी ही बात हो। ये कहते नहीं कि यह मेरी कही हुई बात है, बल्कि सुनानेवालेकी याददाश्तकी प्रशंसा ही करते हैं। ऐसा ये इसलिए करते हैं कि सामनेवाला अपमानित न हो और उसे मानहानिका दुःख न हो।

एक बार एक स्त्री इनके पास आयी और कुछ चाँदीके वर्तन इनको दे गयी, जो रख लिये गये। उसके जानेके बाद इनको पता चला कि वह पागल है। अब तो चिन्ता हुई कि किस तरह ये बर्तन उसके पास लौटाये जायँ। दैवयोगसे उसके पति आ पहुँचे। इन्होंने उनको सब बर्तन लौटा दिये और साथ-साथ यह भी कह दिया कि अपनी पत्नीको वे यह न बतायें कि उसका दिया सामान लौटा दिया गया है, वर्ना उसे दुःख होगा। यह बहुत पहलेकी बात है। अब तो वह अच्छी हो गयी है और दोनों पति-पत्नी आपके पास आते हैं।

दूसरेका ये जितना ख्याल रखते हैं, उतने ही अपने विषयमें भोले हैं। इन्हें कुछ पता नहीं रहता, न अपने खाने-पीनेका, न पहननेका और न ही दवाका। पानी पिया है या नहीं, दवा खायी या नहीं, इतना तक भी इन्हें याद नहीं रहता। कई दफा ऐसा होता कि पानी पी चुके होते हैं, दवा खा चुके होते हैं और कहते हैं कि 'लाओ!' और एक बार तो ऐसा हुआ कि दादाजी थे नहीं और कोई नया नाई आया। क्षौरका सामान उसको लाकर दिया गया। आपने देखा नहीं, शेविंग क्रीमके स्थानपर टूथपेस्ट लगाकर वह क्षौर करने लगा। कुछ मिनटों बाद जब जलन होने लगी

तब कारण ढूढ़नेपर पता चला। कहाँ इतनी विद्वत्ता और कहाँ यह भोलापन!

इनका लोगों के प्रति जो प्रेम है, उसका वर्णन करना भी कठिन, फिर ठीक-ठीक तो बताया ही कैसे जा सकता है—**'गिरा अनयन नयन बिनु बानी'**, वह तो बस देखनेका ही है। कभी इनके पास कोई रहने भी आ जाता है तो ये बहुत प्रेमसे उसका स्वागत-सत्कार करते हैं। आनेवालेकी सारी सुख-सुविधाका ध्यान ये स्वयं रखते हैं और यथाशक्ति उसके अनुकूल वातावरण बना देते हैं। एक बारकी बात है कि एक सज्जन विदेशसे इनसे मिलनेके लिए वृन्दावन आये। मईका महीना था। उन दिनों स्वयं ये वहाँ उस गर्मीमें रह रहे थे। कोई बात नहीं थी, पर आनेवालेको उस भीषण गर्मीसे कष्ट न हो, इसलिए इन्होंने जहाँ उसके ठहरनेका इन्तजाम किया वहाँ बर्फकी शिलाएँ भी मँगाकर रखवा दीं और कमरेका वातारण ऐसा बना दिया कि जैसे एयरकन्डीशन्ड रूम ही हो। आनेवालेका इतना ध्यान! वे सदासे जैसे वातावरणमें रहते हैं उसीके अनुरूप और जिस तरह ये बाहरी लोगोंका ध्यान रखते हैं उसी तरह अपने सेवक-भक्तोंका भी। अभी इनके एक सेवक अस्वस्थ हो गये थे, तो रात-दिन इन्हें उनकी चिन्ता रहती थी कि किस तरह, उनका क्या इलाज कराया जाय, ताकि वे अच्छे हो जायँ। अपना स्वास्थ्य बहुत अच्छा न होनेपर भी इन्होंने पास रखकर अपनी ही देखरेखमें उनका इलाज करवाया। उनको अपने हाथोंसे खिलाया-पिलाया, अपने पास ही सुलाया और स्वयं न जाने कितनी बार उनको लेकर डाक्टरके यहाँ गये। इनके इस प्रेमपूर्ण प्रयत्नसे वे अब बिलकुल स्वस्थ हो गये हैं। शायद ही कोई माँ अपने बच्चेका ध्यान इस तरह रखती हो।

कोई दूसरा भी कभी बीमार हो जाता है तो ये उसकी प्रसन्नताके लिए उसको देखने उसके घर, अस्पताल तक जाते हैं। यों रोगीको

तकलीफमें देखकर इनको बहुत पीड़ा होती है, पर फिर भी जब ये यह समझते हैं कि इनके जानेसे रोगीके चित्तको प्रसन्नता व हिम्मत लिती है, तब ये रोगीकी प्रसन्नताके लिए अपना ख्याल तक नहीं करते।

न जाने इसमें ऐसा क्या है कि ये दुःखी मनुष्यको भी सुखी बना देते हैं। कोई कितना भी दुःखी होकर क्यों न इनके पास आया हो, पर इनके पाससे लौटता खुश होकर ही है। आने वालेको सुखकी भेंट देकर ही ये विदा करते हैं।

एक विशेष बात इनमें यह भी है कि एक बार इन्होंने जिसको अपना लिया, सदाके लिए अपना लिया। कठिन-से-कठिन परिस्थिति आनेपर भी उसे त्यागते नहीं, भले ही लोग इनको भला-बुरा कहें, अथवा निन्दा करें। निन्दाके डरसे ये कभी भागे नहीं और स्तुतिके लोभमें आये नहीं। जो इन्होंने ठीक समझा वही इन्होंने किया भी। निन्दा करनेवालोंका भी इन्होंने भला ही चाहा। ऐसे भी कुछ लोग थे, जो इनका अपकार करना चाहते थे, पर आपने तो ऐसोंका भी उपकार ही किया। इनके शील स्वभावका वर्णन कर सकना किसीके लिए सम्भव नहीं है। वह ब्रह्मके समान अनन्त एवं ईश्वरके समान गम्भीर है। वे अमृतके अगाध समुद्रके समान अबाध मधुर हैं, मधुरताके समान प्यारे हैं, प्यारके समान आह्लाददायी चन्द्र हैं और चन्द्र कोटिके समान शीतल। अन्तमें मैं यही कहूँगा कि जो कुछ भी इनके लिए कहा जायगा, वह सूर्यको दीपक दिखाने जैसा ही होगा। बस, भगवान्से यही प्रार्थना है कि ये स्वस्थ-प्रसन्न रहें और जुग-जुग जीयें।

अपनी बात

अपने पूर्व जीवनमें मुझमें भक्तिके बीज तो थे, परन्तु सत्संग आदिके संस्कार नहीं थे। महाराजश्री जब पहले-पहल जबलपुर पधारे, लोगोंके बहुत आग्रह-करनेपर मैं इनके प्रवचन-श्रवणके लिए गया। प्रथम दर्शनमें ही इनका इतना स्नेह मिला कि मैं बार-बार जाने लगा। दफ्तरसे लौटकर मैं यथाशीघ्र महाराजश्रीके पास पहुँच जाया करता। ये उद्यानकी हरी-हरी घासमें लेटे रहते। मैं इनके पेटपर सिर रख दिया करता और आप मुझे वात्सल्यसे थपथपाते। और मैं घण्टों इस तरह इनका स्नेह और दुलार पाता रहता। मेरा मन उस जीवनसे उचट गया, सतत महाराजश्रीका सान्निध्य चाहने लगा। नौकरी मेरी फौजी थी, जिसे सात वर्षतक न छोड़नेके नियममें मैं बँधा था। स्वामीजी जब जबलपुरसे वृन्दावनके लिए चलने लगे, मैं उनके साथ चलनेके लिए बहुत रोया। महाराजश्रीने द्रवित होकर स्वीकृति दे दी। स्टेशनपर विदा करनेवालोंकी अपार भीड़। मैं महाराजश्रीके ही कम्पार्टमेन्टमें सीटके नीचे छिपकर बैठ गया। मेरे कुटुम्बियों और परिचितोंने मुझे बहुत खोजा (उस डिब्बेको भी)। महाराजश्रीसे पूछा तो उन्होंने कहा—'अभी यहीं तो था, ढूँढ़ लो।' (महाराजश्रीको यह तो ज्ञात था कि मैं उसी ट्रेनमें जा रहा हूँ, उनके कम्पार्टमेंटमें घुसा बैठा हूँ, यह नहीं।) और इस तरह मैं परिवारकी शृङ्खला तोड़कर भाग निकला।

इसके बाद जो होना स्वाभाविक था, मेरी गिरफ्तारीका वारण्ट निकला। महाराजश्रीको मैंने बतलाया, परन्तु वे डरे नहीं। मिलिटरी पुलिसमें उन दिनों अंग्रेज थे। वह समय स्वतन्त्रता-संग्रामका था। विश्वयुद्ध छिड़ा हुआ था। मुझे तो अपनी गिरफ्तारीका किंचित् भय था; परन्तु

महाराजश्री सर्वथा निर्भय। वे पहले भी सन् ३०-३२ में कांग्रेसके सम्पर्कमें रह चुके थे। मिलिटरी पुलिसको आश्रमके आस-पास देखकर भी वे हिचकते नहीं थे। पुलिस आती और लौट जाती। बादमें मुझे बीकानेर राज्यमें श्रद्धेय भाईजी श्री हनुमान प्रसादजी पोद्दारके पास ४-५ महीनेके लिए भेज दिया गया। इसके बादसे तो मैं महाराजश्रीकी सन्निधिमें ही हूँ। इनके जीवनमें निर्भीकताके अनेक प्रसङ्ग मैंने देखे हैं। एक बार अलीगढ़के समीपके छोटे-से स्टेशनपर मेरे साथी ब्रह्मचारीजी छूट गये। महाराजश्रीने जंजीर खींची। गार्डने टिकट ले ली। डरे नहीं कि पैसे पास नहीं हैं, जुर्माना कैसे दिया जायेगा। बादमें वह गार्ड बिना कुछ कहे-सुने टिकट वापस कर गया। केवल उसी दिन निर्भीकता अनेक प्रसङ्ग उपस्थित हुए थे, जिन्हें स्वामीजीने मौजमें ही निबटा दिया।

एक बार जबलपुर जाते हुए बीनाकी गाड़ी छूट गयी, इसलिए इटारसीके रास्ते होकर जाना पड़ा। मेरे साथी छोटेजी ब्रह्मचारी भी इटारसीसे पहले अपने सर्वेण्टके डिब्बेसे फर्स्ट क्लासमें महाराजश्रीके पास आगये थे। टिकट चेकरने दोनों ही अपराधोंपर स्वामीजीसे अतिरिक्त चार्ज माँगा। उन दिनों पासमें पैसा तो रखते थे नहीं, जितना वह माँगता था, उतना हम लोगोंके पास था नहीं। टिकट चेकरने इटारसीपर हम सब लोगोंको उतारकर बड़ा परेशान किया। थोड़ी देर बाद महाराजश्री बोले, 'भाई हमें क्या, हमें रोटी भी खिला देना और हमारी ओरसे पैसे भी तुम्हीं चुका देना।' इनकी मस्ती और निर्भीकता देखकर वह टिकट चेकर बड़ा प्रभावित हुआ और आदरपूर्वक गाड़ीमें बिठा आया।

इसी तरह इनके वात्सल्य और करुणाके अनेक साकाररूप मेरे जीवनमें उतरे हैं। एक बार गुर्देकी भयङ्कर बीमारीमें महाराजश्रीने स्नेहमयी जननीकी भाँति मुझे बार-बार शौच-लघुशङ्का कराने और लिटाने-बैठाने,

दवा देनेमें जो कष्ट उठाया, साथी ब्रह्मचारी स्वर्गीय मधुकरकी बीमारीमें उसे सम्हाला, मेरी उन्मादकी दशामें और अभी हालमें ही माधवजीकी अस्वस्थतामें उनकी प्रतिक्षणकी सार-सम्हालमें उन्होंने जितनी मानसिक व्यथा सही वह अवर्णनीय है।

महाराजश्रीको एक ओर जहाँ तत्त्वानुभूतिकी लोकोत्तर मनीषा प्राप्त है, वहीं अन्यत्र मनस्विता, निरभिमानता, परदु:खकातरता, सौजन्य, सहिष्णुता, संयम, समयपालन और व्यवहारकुशलता आदि अनेक गुण उनके दैनन्दिनके कार्यकलापमें परिलक्षित होते हैं। वृन्दावनमें तथा अन्यत्र मैंने कई बार उनके समीप रहकर अनुभव किया है कि भूखे, नंगे, दीन, आर्त्तके प्रति आपकी करुणा साकार हो उठी है। अनेक बालक आपकी शरणमें आये और विद्याध्ययन द्वारा स्वावलम्बनकी योग्यता पाकर ही गये। कितने ही कुटुम्बोंके भरण-पोषणकी चिन्ताने आपको विकल किया। धरती माँ थोड़ेको बहुत करके लौटाती है। महाराजश्रीने वर्षों वयोवृद्ध तप:पूत एक आदरणीया माताजीका जो स्नेह चुकाया, वह वर्णनातीत है। आप इतने स्नेहपरवश हो गये थे कि वे माताजी महाराजश्रीको जैसे भी, जहाँ भी रखतीं, ले जातीं, शिशुकी भाँति वही करते थे। उनका वह वात्सल्य तथा महाराजश्रीका आत्मसमर्पण एक अनिर्वचनीय संस्मरण है।

श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज भूखोंको भोजन कराते थे। मैंने भी अक्सर देखा है जब महाराजश्री अमीर-गरीबका भेद किये बिना अपने हाथों भोजन परोसते हैं, भक्त लोग प्रेम-विह्वल होकर बड़ी श्रद्धासे प्रसाद लेते हैं। महाराजश्रीकी सुजनता, उनका आह्लाद, उनकी घुल-मिल जानेकी प्रवृत्ति साकार हो उठती है।

उनका कमलकोमल नवनीत-सा हृदय सदा ही करुणापूरित रहता है। उनके नियमित दर्शनार्थियोंमें-से यदि एक भी कदाचित् उनके पास

न पहुँच पाये तो आप चिन्तित हो उठते हैं और उसका कुशल-मङ्गल पूछते हैं। ऐसा भी हुआ है कि कोई बीमार हुआ तो कई बार उसके स्वास्थकी जानकारी प्राप्त करते हैं। उनका कोमल चित्त रोगीके कष्टसे पीड़ित हो जाता है और वे बहुधा उसी रोगसे ग्रस्त हो जाते हैं, इसलिए मैं उन्हें रोगीके पास जानेसे रोकता हूँ। मैंने अक्सर उनके मुखसे सुना है कि 'रोगीके पास जानेपर मेरे मनमें आता है कि इसका रोग मैं ले लूँ और यह पीड़ासे मुक्त हो जाय।'

महाराजश्री **मौने मौनी गुणिनि गुणवान् वाग्मिषु प्रौढ वाग्मि** हैं। उनकी बालकोंमें बालक हो जानेकी लीलाएँ भी दीखती हैं। ध्यानाभ्यासीके सम्मुख वे घण्टों ध्यानस्थ बैठे रहते हैं। गङ्गा किनारे वैराग्यकी मस्ती, अवधूतोंमें फक्कड़पन जैसे सभी गुण समय-समयपर प्रकट होते रहते हैं। उनका जीवन व्यवहार और परमार्थमें समरस है। उनकी गुणगरिमा मेरी बुद्धिकी छोटी-सी तुलापर चढ़ती नहीं। सच्चे अर्थोंमें महाराजश्रीके पचीस वर्षोंके सतत साहचर्यमें मैं उनमें घुल-मिलकर इतना एकाकार हो गया हूँ कि उनके गुण और अवगुणोंको परख नहीं पाता, सब गुण-ही-गुण लगते हैं। जब किसी दूसरेके ब्याजसे मुझे ही डाँटते-फटकारते हैं, उस समय मैं तिलमिला जाता हूँ। बादमें लगता है कि वे मेरे कितने अपने हैं! मैं तो उनका हो नहीं पाया, उन्होंने मुझे अपना बना लिया।

महाराजश्रीका यह एक छोटा-सा परिचय, जो मैं उनकी ही कृपासे उनसे सुन-समझकर और अपने साथियोंके सहयोगसे लिख सका, आपके सामने प्रस्तुत है।

आनन्द मुकुन्दकी जय।

उत्तरार्द्ध

विज्ञानमयोऽयं पुरुषः साक्षात्

महाराजश्रीने आधुनिक मानव-जीवनका सूक्ष्म निरीक्षण किया है और देखा है कि वैज्ञानिक उन्नति, आविष्कार और उत्कर्षके इस वर्तमान युगमें अध्यात्मविज्ञानकी बातें मानवमनको कम आकृष्ट करती हैं, फिर भी अध्यात्म-प्रेमियोंका अभाव विश्वमें कहीं भी नजर नहीं आता। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्तरपर थोड़ा-बहुत अध्यात्म-प्रेमी अवश्य है।

सन्त-जीवनका परिचय अध्यात्मविज्ञानका पूर्ण परिचय है। और, ऐसे सन्तोंके प्रति आकर्षण और जिज्ञासाके मूलमें भी अध्यात्मप्रेमका बीज ही विद्यमान है। श्रुति भगवतीका कहना है—

आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।

अतः सद्‌गुरुकी सार्थकता, अध्यात्मके रहस्योंका वैज्ञानिक रीतिसे उद्‌घाटन करते हुए व्यक्तिको परमात्मप्राप्तिके मार्गपर अग्रसर करनेमें है। महाराजश्रीका कहना है कि ज्ञानकी पूर्णताके लिए, लक्ष्यप्राप्तिके लिए आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक विज्ञान—इन तीनोंका ऐक्य आवश्यक है। वे कहते हैं कि, उपनिषदोंसे लेकर फिल्मी पत्रिका—माधुरी, मनोरमा आदि सबकी ठीक-ठीक संगति हम लगा सकते हैं। सब हमको मान्य हैं। पर वे चेतावनी भी दे देते हैं, 'देखो भाई, यह अध्यात्मका मार्ग जरा विलक्षण है। इसमें भी अच्छे साधकके जीवनमें कभी-कभी चमत्कार आते हैं या होते हैं। पर अज्ञानीकी दृष्टिमें चमत्कार है, ज्ञानीको उसका रहस्य मालूम है। बेहतर यही होगा कि हम न तो चमत्कारोंके अस्तित्वको ही नकारें और न ही उनके चक्करमें फँसें। उनसे बचकर रहनेमें ही भलाई है।'

सद्‌गुरुदेव समय-समयपर साधक, जिज्ञासुओंका मार्गदर्शन करते रहें। बस, सन्त कृपारूपी सूर्यकी रश्मियोंको ग्रहण करनेके लिए आँखको खुली रखना पड़ता है।

सत्संग

आइये, हम उनके इस दिव्य ज्ञानभक्ति-सम्पन्न जीवनकी थोड़ी-सी झलक पानेका प्रयास करें। अनिर्वचनीयका निर्वचन गुरु कृपाके रसास्वादनमें विशेष रस घोल देता है। उनके सत्संगका आनन्द लेनेवाले प्रेमी लोग हमेशा आज भी इस दिव्य रसका आनन्द लूटते रहते हैं।

महाराजश्री सत्संग-रूप ही थे। उनका नित्यका सत्संग भी निजानन्दकी मस्ती थी, किसी लौकिक उद्देश्यकी पूर्तिके लिए नहीं था। वे भरी सभामें स्पष्ट कहते कि 'हमारे लिए तो आप सब श्रोता लोग भगवद्रूप, ब्रह्मरूप, आत्मरूप ही हैं। सो, अपन, प्रवचन-कथा तो भाई

अपने रसास्वादनके लिए ही करते हैं।' यही कारण है कि उठते, बैठते, रास्ते चलते, क्षौर करवाते, भोजन करते और सोनेके लिए पलंगपर लेटकर भी जब तक नींद न आजाये—यह सत्संग चलता था। मानो वे यह सिखा रहे हों कि, '**आसुप्तेरामृते काले नयेद् वेदान्तचिन्तया**'। वे कहते हैं, 'सत्संग तो हमारा व्यसन है'।

पूज्यश्रीके मुखसे अनेकों बार श्री श्रीआनन्दमयी माँका यह कथन सुननेको मिला है—'***हरिकथा कथा, अन्य सब वृथा व्यथा***'। यही उनका सिद्धान्त-वाक्य है। क्योंकि, कई बार ऐसा देखनेमें आया कि जब कभी कोई महाराजश्रीके पास आकर जैसे-ही सांसारिक चर्चा करना शुरू करता, पूज्यश्री बड़ी ही कुशलतापूर्वक तुरन्त उस चर्चाको भगवद्-चर्चामें बदल देते। गम्भीरतासे सोचें, तो यह महापुरुषकी कृपा ही है जो संसारमें आसक्त प्राणियोंको भी भगवान्‌में लगाते हैं। सम्पूर्ण भारतमें अनेक प्रान्तोंमें कई बार अनेक सत्संगका आयोजन हुआ।

विद्या और विद्वानोंके प्रति सहज प्रेम ऐसा था कि हर प्रकारसे व्यक्तिको आगे बढ़ानेके लिए तत्पर रहते थे, प्रोत्साहित करते थे। इसी दृष्टिसे ग्रन्थोंके आधारपर प्रवचनके क्रमको सन् १९८३ से रूपान्तरित किया- 'प्रश्नोत्तरमें'।

उनका कहना यह था कि 'मैं तो लम्बे अर्सेसे अनेक ग्रन्थोंको लेकर कई बार प्रवचन कर चुका और सत्संगी लोग श्रवण भी करते रहे। परन्तु इतनेसे सत्संगका उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता। लोगोंने श्रवणके बाद मनन, निदिध्यासनपूर्वक कितना प्राप्त किया और उनके तत्तद् विषयक क्या-क्या प्रश्न हैं, यह भी मैं जानना चाहता हूँ। अतः अब मैं अपनी ओरसे किसी ग्रन्थको लेकर प्रवचन नहीं करूँगा। प्रश्न पूछे जायेंगे, तो मैं उत्तर अवश्य दूँगा। प्रश्न गलत भी हो सकता है, उत्तर सही मिलेगा। एक

बार किसीने पूछा कि महाराजश्री, आपको कौन-से प्रश्नका उत्तर नहीं आता है? महाराजश्री हँसकर बोले, 'इसी प्रश्नका उत्तर नहीं आता है।' उनका तो कहना था कि शंकाका समाधान नहीं, शंकाका तो पेट ही फाड़ा जाता है। देखिये,

एक बार किसी जिज्ञासुने प्रश्न किया कि महाराज जी, जैसे व्यष्टिमें अविद्या है, वैसे ही समष्टिमें माया है। तो क्या हम (जीव) मायाके भी अधिपति हैं — ऐसी भावना कर सकते हैं?

महाराजजी तुरन्त मुस्कुराते हुए बोले, 'अरे बाबू, व्यष्टि और समष्टिका भेद ही अविद्या-जनित है। देश, कालको लेकर व्यष्टि और समष्टिका भेद बनाते हैं और जबकि ये दोनों अनन्त हैं और आत्मासे एक हैं। ऐसेमें इनकी समष्टि कैसे बनेगी भला? जब जड़ और चेतनकी विभाजक रेखा ही नहीं मिलती है तो फिर व्यष्टि और समष्टिका भेद कैसे बनेगा? अरे, तुम मायाके अधिपति होनेके चक्करमें मत फँसो!'

प्रश्नोत्तरका यह सिलसिला १७ नवम्बर, १९८७ तक जहाँ भी वे पधारे, अनवरत चलता रहा। लेकिन सर्वाधिक बोलबाला 'आनन्द वृन्दावन'में रहा। क्योंकि, रुग्णावस्थाके कारण लीलासंवरणके पूर्वके कुछ माहसे वृन्दावनसे कहीं बाहर नहीं जाते थे। पर सुबहसे लेकर रात्रि शयनसे पूर्वतक सत्संगका सिलसिला चलता रहता। हर समय श्रद्धालु भक्त जिज्ञासुओंका जमघट लगा ही रहता। सभी अपने-अपने प्रश्नोंका उत्तर पानेके लिए लालायित रहते। एक होड़-सी मची रहती। उपनिषद्, भागवत, रामायण, गीता, वेद-शास्त्र, साहित्य और मानव-जीवनकी अनेक समस्याओंपर, सन्तों और भक्तोंके अनुभवोंपर और भक्त एवं जिज्ञासुओंकी आन्तरिक स्थितियोंपर भी प्रश्नोत्तरकी झड़ी लगी रहती। उनके उत्तरमें पूर्ण जीवनके लिए चारों पुरुषार्थोंका समावेश हो जाता है।

उनका यह कहना है कि, इतने नरम न बनो कि लोग तुम्हें निगल जायें। इतने गरम न बनो कि लोग तुम्हें छू भी न सकें। इतने सरल मत बनो कि लोग तुम्हें मूर्ख बना दें, इतने जटिल न बनो कि लोगोंमें तुम घुलमिल ही न सको। इतने गम्भीर न बनो कि लोग तुमसे ऊब जायें, इतने छिछले मत बनो कि लोग तुम्हें मानें ही नहीं। इतने महँगे न बनो कि लोग तुम्हें बुला ही न सकें, इतने सस्ते भी मत बनो कि लोग तुम्हें नचाते ही रहें!!'

'जब आप आत्मा-परमात्मासे अपने अहंकारको मिलावेंगे तो आत्मा-परमात्मा कैसे दीखेगा? आप अपने अहंकारको छोड़ दीजिये। अहंकार, निष्ठाहीन लोगोंको ही सताता है। निष्ठावान् पुरुषोंके पास कभी फटकता तक नहीं।'

'निष्कामता बुद्धिको समेटकर अपनी आत्मामें स्थापित कर देती है।'

'जहाँ कर्म कर्मजन्य फलके लिए किया जाता है, वहाँ कर्म बन्धनका हेतु हो जाता है।'

'आपको बन्धन ही प्रिय है तो भगवान्‌के साथ बँध जाइये; देखिये फिर उसका कमाल! अन्य सब बन्धन स्वयमेव छूट जायेंगे। भगवान्‌के भुजपाशमें बँधिये न!'

'अपनी इसी निष्ठामें रहो कि मैं नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-परमात्म स्वरूप हूँ।'

'सचमुच आप सर्वश्रेष्ठ हैं। जिससे परे और कुछ भी नहीं है, वह ब्रह्म हैं आप!'

अमृत-महोत्सव

२६ सितम्बर, १९८६की वह चिरस्मरणीय प्रातः, आनन्द-वृन्दावनके अध्यात्म-विद्या केन्द्रके मुख्य हॉलमें युवा एवं वृद्ध ब्राह्मण-विद्वानों द्वारा सस्वर वेदमंत्रोंसे स्वस्तिवाचन हो रहा है। ७५ नन्हीं-नन्हीं कुमारिकाएँ सिरपर सजे हुए मंगल-कलश लिये पंक्तिबद्ध स्वागतके लिए खड़ी हैं। हाँ, एक धौरी वत्सला गाय अपने नन्हें शिशु सहित नेत्र-फैलाये चकित-सी चारों ओर देख रही है कि यह सब क्या हो रहा है? भाई, आनन्द मनाओ, आनन्द! खूब मंगल मनाओ!! क्योंकि, आज हमारे परमपूज्य महाराजश्रीके लोकोपकारी एवं यशस्वी जीवनके ७५ वर्ष पूर्ण होनेके उपलक्ष्यमें 'अमृत-महोत्सव'का शुभारम्भ हुआ।

महोत्सवमें देश भरके उच्चकोटिके सन्त महात्मा, विभिन्न शास्त्रोंके उद्भट विद्वान् पधारे। अपार जन-समुदाय तो देखते ही बनता। सुबह, शाम दोनों समय सत्संग, प्रवचनकी सुधा धारा प्रवाहित होती! उस समयकी भीषण गर्मीने भी श्रोताओंपर कोई प्रभाव नहीं डाला। लोग तो बस महात्माओंका सत्संग करते एवं अन्य कार्यक्रमोंमें भाग लेते।

भोजनादिकी कोई चिन्ता नहीं। सबको समय-समयपर चाय, नाश्ता, भोजनादि मिल जाता।

सब लोगोंकी श्रद्धा एवं उत्साह देख प्रकृति भी अपनेको नहीं रोक सकी और उसने भी जल-वृष्टि करके मानो अपनी प्रसन्नता प्रकट की। और, महाराजश्रीके उद्‌गार थे, 'आप सब लोगोंका प्रेम, उत्साह व सद्‌भाव देखकर मनमें आया है कि हाँ, अभी यह शरीर कुछ दिन और रहे।'

अबतक कैंसर रोगके कारण पूज्यश्रीका स्वास्थ्य बहुत ही नर्म हो चुका था। बैठनेमें बहुत ही कठिनाई होती थी। शरीर भी कृश हो गया था। इस कारण लोगोंके मनमें कहीं भावी अमंगलकी आशंका भी मँडरा रही थी। पर महाराजश्रीके उपर्युक्त आश्वासनने डूबते हुओंको सहारा दे दिया। सबके आनन्द एवं उत्साहको और भी बढ़ा दिया।

पाँच दिनके लिए इस कार्यक्रमकी योजना बनी थी, परन्तु वह छः दिन तक निर्विघ्न चलता रहा। सामान्य जनता और विद्वद्-समाज—सबके स्तरपर महाराजश्रीने बीमारीकी स्थितिमें भी रोज-रोज कई घंटोंतक व्यास पीठपर विराजमान रहकर वेदान्त, भागवत, गीता, रामायण और वृन्दावनकी महिमाको लेकर प्रवचन किये। उन्होंने कहा, 'तत्त्वज्ञोंकी कसौटीपर अपने बोधकी परीक्षा देनेके लिए बोलता हूँ, पूजा और ख्यातिके लिए नहीं।' यही नहीं जहाँ अनेक संस्थाओंने अनेक अभिनन्दन-पत्र और बधाइयाँ, आशीर्वाद और शुभेच्छाएँ प्रदान कीं अथवा भिजवायीं; वहीं महापुरुषकी विनम्रता देखिये कि वे स्वयं अपने लिए सबसे आशीर्वादकी अपेक्षा रखते हुए कहते हैं, आप सब लोगोंका आशीर्वाद प्राप्त रहे और जबतक यह शरीर रहे, तबतक हमारे जीवनमें धर्माचरण रहे, हमारे हृदयमें भगवान्‌की भक्ति रहे, हमारी बुद्धिमें वेद-वेदान्तोंके

प्रति श्रद्धा बनी रहे और हमारे अनुभवमें अद्वैत-तत्त्व, जिसमें ज्ञाता-ज्ञेयका किंचित् भी विभाग नहीं है, उस रूपमें हमारा अनुभव बना रहे। आप सब लोगोंका आशीर्वाद, आप सब लोगोंका संकल्प, सद्भावना हमको हमेशा प्राप्त होती रहे!

महाराजश्रीने १९ वर्षकी आयुमें आनेवाली मृत्युसे बचनेके लिए महात्माओंकी शरण ली थी, उनसे आशीर्वाद पाये थे; परन्तु किसीने यह नहीं कहा कि उनका शरीर ७६ वर्ष तक बना रहे। संन्यासके पूर्व ही ब्रह्मज्ञान और उसके भी पूर्व इष्ट साक्षात्कारके लिए उन्होंने जो साधना की, अनुष्ठान किये और सत्संग किया और जीवन भर सरस्वती भगवतीकी जो आराधना की उसका एक लोकोत्तर प्रभाव उनकी आयुको १९ वर्षके बदले चौगुनी करके ७६ वर्ष पूरा करनेवाला सिद्ध हुआ, ऐसा इस महोत्सवमें सम्मिलित सन्तोंने बताया।

वृन्दावनके अतिरिक्त बम्बई, बनारस, कलकत्ता आदि विभिन्न स्थानोंमें भी उनको आमन्त्रित करके लोगोंने बड़े उत्साह एवं प्रेमके साथ 'अमृत-महोत्सव' मनाया। इससे महाराजश्रीके प्रति हृदयका प्रेम, आदर और आत्मीयताका परिचय मिलता है। प्रत्येक व्यक्तिको उनका प्रथम दर्शन कर ऐसा लगता कि,

माधुर्यविस्रम्भविशेषभाजा कृतोपसंभाषमिवेक्षितेन।

अर्थात् उनके सौम्य एवं विश्वासपूर्ण अवलोकनसे ऐसा प्रतीत होता कि उनसे कभी सम्भाषण हो चुका है, मानों वे हमारे पूर्व-पूर्वके परिचित हैं!!

सर्वभूतहिते रताः

वेदान्त-शास्त्रके अनुसार तत्त्वज्ञानी पुरुषमें तीन धर्म आजाते हैं —एक, '**स सर्वेषाम् अधिपति**' अर्थात् वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंका अधिपति होता है। उसके संकल्पके अनुसार वे बनते और बिगड़ते हैं। वह जानता है कि ये हमारी दृष्टि हैं। दूसरे, अपूर्व वैदुष्य—माने एक विज्ञानसे सर्वविज्ञान। उसने वह वस्तु प्राप्त कर ली है कि दुनियामें कुछ भी जानना बाकी नहीं है और तीसरा, सर्वभोगमें—चाहे बेझरकी रोटी हो, चाहे हलुवा-पूरी हो, चाहे उपवास हो—उसके आनन्दका कभी लोप नहीं होता है। वह हमेशा बना रहता है। पर, एक बात ऐसी है, जिसमें बौद्ध, जैन, वेदान्ती सब सहमत हैं। वे कहते हैं कि परमार्थकी प्राप्ति हो जानेपर केवल क्लेशकी शान्ति और मोक्ष ही नहीं होता। एक और चीज हो जाती है—तत्त्वज्ञ महापुरुषका जो जीवन शेष होता है, उसमें एक महाकरुणाकी धारा प्रवाहित होती है, जिसमें सबका भला ही है। जैन कहते हैं कि उसमें अहिंसाकी प्रतिष्ठा हो जाती है, बौद्ध कहते हैं कि करुणाकी प्रतिष्ठा हो जाती है और वेदान्ती कहते हैं—'**सर्वभूतहिते रताः**'। बात एक ही है, शब्द अलग-अलग हैं।

वस्तुतः जीवन्मुक्त ज्ञानी भक्त सन्त-सद्गुरु जब सर्वात्माकी सेवामें समर्पित हो जाते हैं, तो उनके व्यवहारमें और सिद्धान्तमें ऐसा समन्वय

होता है कि मनसा-वाचा-कर्मणा एकता लक्षित होती ही है। किसीने कहा है—

किमत्र चित्रं यत्सन्तः परानुग्रहतत्पराः।
नहि स्वदेहशैत्याय जायन्ते चन्दनद्रुमाः॥

यहाँ ऐसा कुछ वैचित्र्य नहीं कि सन्तजन परहित-परायण हों, यह तो उनका सहज स्वभाव है। क्या कहीं चन्दन-तरु अपनी शीतलताका स्वयं अपने वपुके लिए ही उपयोग करता है!

यह सैद्धान्तिक कथन-मात्र नहीं, अपितु व्यावहारिक सत्य है। सुधा भरी मुस्कानसे समाश्लिष्ट वह छवि आँखोंके आगे चमक-सी जाती है। वे कहते कि 'चेहरा कभी सूखा नहीं, हमेशा गीला ही होना चाहिए।' और, उनके जीवनमें यह स्थिति हमेशा बनी रही। इसलिए जिस-जिसको उनका चैतन्य संस्पर्श मिला, प्रेम मिला, कृपा मिली, करुणा मिली, सद्भाव-सहानुभूति और आश्वासन मिला, दर्शन-श्रवणका लाभ मिला, मार्गदर्शन मिला—उन सबने उनका नित्यसंयोग प्राप्त कर लिया। सब उनकी अपनी ही आत्मा होनेसे सब प्रिय हैं। अखण्ड आनन्द-स्वरूप गुरुदेवकी कृपा-भगवती आनन्दवृष्टि किये बिना कैसे रह सकती है! यह तो सन्त हृदयकी विवशता है।

वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचोवाचः।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः॥

जिनका मुखमण्डल सहज प्रसन्नताका सूचक हो, जो हृदयमें दया रखते हैं, जिनकी वाणीमें अमृत है, जो सदैव परोपकार निरत हैं, ऐसे महानुभाव किसके द्वारा वन्दनीय नहीं है?

अद्धय-परिनिष्ठा—आस्थाराहित्य

'स्वातन्त्र्य-हीन बोध और बोधहीन स्वातन्त्र्य—दोनों ही किसी कामके नहीं'—यह है महाराजजीका चेतावनी पूर्ण उद्‌बोधन। यही एक तत्त्वज्ञकी कसौटी है।

वेद-वेदान्तमें तत्त्वज्ञके लिए ईश्वर-पारतन्त्र्य भी स्वीकार नहीं किया गया है। क्योंकि, तत्त्वज्ञ दृश्यके नियन्ता ईश्वरको अपनेसे अभिन्न कर देता है। माने परोक्ष विधया ईश्वर नहीं है, अपरोक्ष विधया ईश्वर है अर्थात् वह हमारी आत्मा है। सो, देश-काल-वस्तुका नियन्ता जो ईश्वर है, उससे अभेद होनेपर अदृष्ट सुख-दु:खका भय भी नहीं रहता। रही बात दृष्ट सुख-दु:खकी! महात्माका शरीर तो वस्तुत: पंचायती धर्मशालाके समान होता है। उसमें यदि कोई विकार प्रतीत होते भी हैं तो वे भक्तोंको सुधारनेके लिए, उनके कल्याणके लिए आते हैं। उनके रोग भी भक्तोंको सेवालाभ देनेके लिए आते हैं। महात्मा स्वयं तो शून्याकाशवत् निर्विकार और स्वस्थ होते हैं। इसी कारण दृष्ट दु:खादिके निवारणके लिए वे किसी ईश्वरसे प्रार्थना नहीं करते फिरते!

पर, इस स्वातन्त्र्यके नामपर कहीं जीवनमें उच्छृंखलता न पल जाये, इसपर भी ध्यान रखना आवश्यक है। पूज्यश्रीका कहना है कि, **'यह ऐसा ज्ञान है, जहाँ सदाचार और दुराचारमें साम्य हो, पर तुम्हारी वृत्ति सदाचाराकार रहे; उपास्य और अपास्यमें साम्य होनेपर भी तुम्हारी वृत्ति उपस्याकार रहे; समाधि और विक्षेपमें साम्य रहे, पर स्वभावसे वृत्ति समाहित हो; अपरिच्छिन्न-परिच्छिन्न एक दिखनेपर भी तुम्हारी वृत्ति अपरिच्छिन्न-ग्राहिणी हो।'**

यह है सत्-सम्प्रदाय। संन्यासियोंके लिए उनका विशेष उपदेश यह है कि **'त्र्यैषणात्याग संन्यासके साथ हो गया। अब जीवनभर उसका निर्वाह करो!'** उन्होंने स्वयं भी पूर्ण वैराग्यपूर्वक इसे निभाया। न तो गद्दीकी परम्पराका आग्रह किया और न ही अपने नामके साथ कोई नवीन सम्प्रदाय चलाया।

'यह तो ज्ञान-मार्ग है, जो गुरु-शिष्य परम्पराको लेकर सत्-सम्प्रदायके गौरवका विस्तार करता है। इसमें व्यक्तित्वका कोई महत्त्व नहीं है।'—ऐसा वे बोलते थे। प्रचार, किसी प्रकार उन्हें पसन्द नहीं था।

यद्यपि बोध स्वयं निष्ठा है, परन्तु निजानन्दसे अन्तःकरणका छक जाना सुन्दरतापर श्रृंगारके समान है। **'स्वमहिम्ने प्रतिष्ठितं'**—अपनी महिमामें प्रतिष्ठित गुरुदेवके जीवनमें उनके जीवन-दर्शन ***'सियाराममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी***—को चरितार्थ हुए देख सकते हैं!

हे अप्रतिम आत्मा! शत-शत वन्दन!!

भूरे रंगकी एक बड़ी कार मन्दगतिसे आनन्द वृन्दावन आश्रमके आहातेमें प्रवेशकर अध्यात्म विद्या केन्द्र भवनके सामने रुक जाती है। २२ सितम्बर, १९८७का दिन है। सायंके ४ बज चुके हैं। वेदके विद्यार्थी एवं पण्डित वेद-पाठका मंगल-गान कर रहे हैं।

हमारे प्रात:स्मरणीय महाराजश्री कलकत्तामें शल्य-चिकित्साके दौरसे गुजरकर एक महीनेकी अवधिके बाद वृन्दावन लौटे हैं। भक्तगणके हृदयमें आशा-निराशाके मिश्रित भाव हैं। 'कैंसर' शब्द और इसके

असाध्यपनेके स्वभावसे जहाँ एक ओर मनमें निराशा है तो वहीं दूसरी ओर यह सोचकर आशा बँधती है कि कलकत्ताके डाक्टरों द्वारा कुछ उपचार हुआ है, ईश्वर अवश्य ही सब ठीक करेगा।

अक्टूबर मासका तीसरा सप्ताह आगया है और शनैः-शनैः वृन्दावन आश्रममें महाराजश्री स्वास्थ्य-लाभ कर रहे हैं। शल्य-चिकित्साके पश्चात् गिरे हुए स्वास्थ्यमें अपेक्षाकृत सुधार दिखायी दे रहा है। डॉक्टरोंकी सलाहसे प्रतिदिन दर्द कम करनेका इन्जेक्शन दिया जाता है। एक माह पूर्व जो सत्संगका क्रम अवरुद्ध-सा हो गया था, पुनः शुरू हुआ और १७ नवम्बर तक चलता है। पर, यह सत्संग महाराजश्रीके सत्संगमय जीवनकी आखिरी कड़ी सिद्ध होगी, इसकी किसीको कल्पना तक नहीं थी।

१७ नवम्बरकी रात्रिमें शरीरमें कँपकपी और फिर ज्वर आजाता है। आवश्यक उपचार करनेके उपरान्त भी हृदय सुस्तीकी ओर जानेका संकेत दे रहा होता है।

१८ नवम्बरको देशभरमें निकट भक्तोंके पास यह खबर पहुँच गयी है कि लगता है हमारे महाराजश्रीने अपनी लीलाके संवरणका संकल्प कर लिया है। विशेषज्ञ डॉक्टरोंकी टीम दिल्लीसे पहुँच गयी है। लोगोंके दिल सहमे, सहमे हैं। ईश्वरसे प्रार्थनाएँ की जा रही हैं। सेवक-वर्ग सेवामें प्राण-पणसे जुटे हैं। चिकित्सक अपने पूरे-पूरे चिकित्सा-ज्ञानका उपयोग करनेमें लगे हैं!

१९ नवम्बर, १९८७, मार्ग शीर्ष कृष्ण त्र्योदशी, प्रातः दो बजेके करीब अर्थात् ब्रह्मबेला, व्यष्टि-प्राण समष्टि-प्राणसे एक हो, सर्वव्यापक हो गये। **'तस्य प्राणाः न उत्क्रामन्ति, इहैव समवलीयन्ते'**।

आजके दिन हमारे सर्वस्व धन, दर्शनीय, वन्दनीय श्रीविग्रहका चिरवियोग हमें प्राप्त हुआ। जिसके लिए अब भी मन गवाही देनेको

तैयार नहीं है। यद्यपि अधिकांश सत्संगी-समुदाय इस बातको समझता है कि अविनाशी, पूर्ण, नित्य, स्वत:सिद्ध एवं साक्षात् अपरोक्ष तत्त्वमें 'वियोग'की कल्पना नहीं बनती है; किन्तु उसी तत्त्वकी 'महाराजश्री'के रूपमें जो अभिव्यक्ति थी—जो हम भक्तों एवं साधकोंके लिए सर्वस्व थी, उसको क्रूर विधिके हाथोंने हम सबसे छीन लिया।

'अध्यात्म-जगत्का दैदीप्यमान सूर्य अस्त हो गया'— यह समाचार बिजलीकी भाँति देश भरमें फैल गया और पौ फटते-फटते आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुष वर्गका एक समुद्र-सा उमड़ पड़ा आनन्दवृन्दावनके श्रीनृत्यगोपालजीके मन्दिरके प्रांगणकी ओर! सबकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है, वाणी मूक है, हाथोंमें पुष्पांजलि है और सामने है वही चिर परिचित मुस्कुराता हुआ पर निमीलित नेत्र किये, मौन धारे वह श्रीविग्रह! भगवन्नाम-संकीर्तन हो रहा है। और कोई कुछ नहीं बोल पा रहा! सबकी नजर उसी विग्रहको निहारनेमें तत्पर है। हृदयमें है असह्य-वेदना कि अब हमको कौन रास्ता बतावेगा?

२० नवम्बरका दिन है। पूरे आश्रममें जहाँतक दृष्टि जाती है, अपार जन-समुदाय दिखयी पड़ रहा है। प्रात: १० बजनेवाले हैं। श्रीनृत्यगोपाल सभागृहके दरवाजे खुलते हैं। महाराजश्रीके पार्थिव शरीरको कन्धेपर उठाये भक्त-समुदाय निकल पड़ा और श्रीउड़ियाबाबा आश्रम होते हुए परमहंस आश्रमतक ले आये। इस स्थानपर उनके पार्थिव शरीरको एक ऐसी खुली जीपमें रखा गया जो फूल-मालाओंसे सुसज्जित थी। और, अब शुरू हुई शोभा-यात्रा! लगभग २० हजार भक्तोंने इसमें भाग लिया। जिस ओर यह गुजरती, लोगोंकी आँखें नम हो जातीं। जगह-जगह पुष्प-वर्षा हुई। पूरा वातावरण स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती 'अमर रहें'के गगन भेदी उद्घोषसे गूँज उठा। और, ठीक अपराह्न १२

बजे वैदिक मन्त्रोंके साथ श्री यमुनाजीमें महाराजश्रीके पार्थिव शरीरका विसर्जन होता है एवं वह शरीर सदैव-सदैवके लिए आँखोंसे ओझल हो जाता है। लीला-संवरणसे पूर्वके दिनोंमें उनका एक वाक्य प्रायः सुननेमें आता था—'अब यह शरीर कछुओंके लिए भण्डारा बनेगा।' जिस अध्यात्म-सागरकी अंशधाराके रूपमें निरन्तर प्रवाहित होकर श्रद्धालु-जनोंको आध्यात्मिक स्नानका अवसर प्रदान करते रहे उसीकी अजस्र शान्तिमें लीन हो गये।

यद्यपि तत्त्वज्ञ महापुरुषके लिए विदेहमुक्तिका कोई महत्त्व नहीं रहता। क्योंकि वह तो ज्ञान समकाल ही अपने को मुक्त जान जाता है—**'ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति'**। पर, संन्यास-आश्रमधर्मके अनुसार महाराजश्रीके पट्टशिष्य महन्तश्री ओंकारानन्द सरस्वतीजीके कुशल मार्गदर्शनमें पूज्यश्रीके महानिर्वाणकी षोडशी भी विधिवत् सम्पन्न की गयी।

षोडशी भण्डारेमें दिनभर लोगोंका ताँता लगा रहा। सभी उस महापुरुषके नामपर प्रसाद पानेको लालायित थे, देखते-ही बनता था। क्यों न हो! वे सबके थे और सब उनके थे। वस्तुतः उन्हें तो सब आत्मरूप ही दिखते थे। **'ब्रह्मैवेदं अमृतं पुरस्ताद, आत्मैवेदं अमृतं पुरस्ताद, अहमेवेदं अमृतं पुरस्ताद्।'** ऐसेमें किसीके प्रति राग-द्वेष, घृणाका प्रश्न ही कहाँ है? सबके प्रति वही एकरस प्रेम, प्रेम और केवल प्रेम था उनके हृदयमें! और वही प्रेम सबको इस षोडशी-उत्सवमें शामिल होनेके लिए खींच रहा था।

वृन्दावनमें अनेक स्थानोंपर श्रद्धांजलि-कार्यक्रम हुआ, जो कि अनेक दिनों तक चला। क्योंकि, सब प्रेमीजन उनके प्रति अपने श्रद्धासुमन अर्पित करना चाहते थे। उपस्थित अनेक विद्वानों एवं सन्तोंने श्रद्धाञ्जलि

देते हुए महाराजश्रीके विषयमें जो भाव-विचार व्यक्त किये उसमें महाराजश्रीके प्रति उनकी श्रद्धा, कृतज्ञता, विनम्रता और पूज्यभाव स्पष्ट ही झलकते थे। (द्रष्टव्य, आनन्द बोध, 'श्रद्धा-सुमाञ्जलि' विशेषांक, १९८८)

वृन्दावनकी भाँति बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली आदि स्थानोंपर भी अनेको श्रद्धाजलि सभाओंका आयोजन हुआ और सबने अपने-अपने भावानुसार अपने प्रिय आराध्य, सबके सुहृद, सन्त-हृदय पूज्य महाराजश्रीको भाव-भीनी सुमाञ्जलि प्रदान की।

सच पूछें तो हम सबके हृदयमें महाराजश्री प्रत्यगात्मा होकर, अन्तरात्मा होकर और पञ्चकोशात्मक श्रीविग्रह होकर आज भी निवास कर रहे हैं।

गुरुदेवने हमको आराधना-शक्तिका आधार दिया है, निराधार नहीं छोड़ा है। उनके स्वर-चैतन्यमें और शब्द-चैतन्यमें श्रोताओं और पाठकोंको आज भी इस शक्तिका अनुभव होता है। शरणमें आये हुएके अधिकारके अनुरूप साधन-भजन और मन्त्र देकर गुरुदेव शिष्यके सम्पूर्ण जीवनको आराधनामय बना देते हैं, यह उनकी अहैतुकी कृपा है। भगवत् स्मरण-चिन्तनसे जो शक्ति मिलती है, गुरुदेवके स्परण-चिन्तनसे भी वही शक्ति मिलती है। अब तो जो जहाँ है, वहीं उसकी आराधना चल रही है। उनके विचारोंके अनुशीलन, उनके सत्संगमें बिताये दिनोंके भावपूर्ण स्मरणके द्वारा वे हमारे हृदयमें और गहरे उतर गये हैं।

वाङ्मय श्रीविग्रह

महापुरुषोंका शरीर नहीं रहता, परन्तु उनका शरीर रह जाता है कौन-सा? कृतिका! कृति ही उनका शरीर होता है। उसी कृतिको लोग अध्ययन करते हैं, पठन-पाठन करते हैं, अपने जीवनमें उतारते हुए जीवनको सफल बनाते हैं।

प्रश्नोत्तर-शैली प्रारम्भ होनेके पूर्व १९८२ दिसम्बरमें 'भागवत-पाक्षिक-कथा'के समय वीडियो-कैसेट तैयार हुए। इसी प्रकार श्रीमद्भागवद्-गीताके क्रमशः अध्याय ११ से अध्याय १५तकके भी वीडियो कैसेट तैयार हुए, 'अमृत-महोत्सव'के सम्पूर्ण कार्यक्रमका वीडियो-सेट भी बना। फिर तो प्रश्नोत्तर माला भी वीडियोमें प्रकट हो गयी।

ऑडियो-कैसेटका बहुमूल्य खजाना तो है ही; परन्तु महाराजश्रीकी प्रवृत्ति ऑडियो-विडियोको लक्ष्यमें रखकर कभी नहीं हुई। उनके लिए तो सत्संग नित्यनियम था। श्रोताओंकी संख्याको भी वे महत्त्व नहीं देते थे। ऑडियो कैसेटमें महाराजश्रीकी अमृतवाणी रिकॉर्ड करनेका क्रम

करीब सन् ६०से प्रारम्भ हुआ; जो कि १७ नवम्बर, १९८७की सायं सत्संग सभातक चला। इसके अतिरिक्त प्रवचनोंको लिपिबद्ध करके पुस्तकरूपमें प्रकाशित करनेका क्रम भी पूर्ववत् चलता रहा और आज तक जारी है। आज उनके अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हो चुके हैं, हो रहे हैं और भविष्यमें भी होते रहेंगे। क्योंकि अनेक स्थानों पर, अनेक व्यक्तियोंके पास कैसेटोंमें उनकी अनमोल वाणी सुरक्षित है और जो प्रकट होती है, उसको श्रद्धेय पूज्य महन्तश्री ओंकारानन्दजीके कुशल मार्गदर्शन एवं निदेशानुसार अविलम्ब प्रसिद्ध करनेका प्रयत्न किया जाता है। पिछले ८ वर्षोंमें ३० नवीन मुद्रण और २३ पुनर्मुद्रण तथा ४ गुजराती मुद्रण प्रकाशित हुए। वाराणसी स्थित श्रीअखण्डानन्द सरस्वती सेवा-संस्थानका भी प्रकाशन क्षेत्रमें अपूर्व सहयोग मिला। इसके द्वारा १२ नवीन मुद्रण और और ४ पुनर्मुद्रण प्रकाशित हुए। उनकी कृति तो अमर है, उपदेश अमर है और आगे भी वह चलता रहेगा; सबको लाभान्वित करता रहेगा।

सन् १९६६से १९८४ तक महाराजश्रीने 'चिन्तामणि' मासिक-पत्रिका द्वारा हमारी वैदिक संस्कृतिकी वाङ्मय छविको रेखांकित करके जन-जीवनको स्वस्थ साहित्यसे पुष्ट किया। सन् १९८२ से एक नवीन मासिक पत्रिका 'आनन्द बोध'का प्रकाशन शुरू हुआ और यह वर्तमानमें परमपूज्य श्रीबाबाजी (श्रीविश्वम्भरनाथ द्विवेदी)के कुशल सम्पादनमें प्रगतिकी ओर है। 'आनन्द बोध' महाराजश्रीका एक ऐसे अद्भुत संकल्पका व्यक्त रूप है, जिसकी ग्राहक प्रतिमाह प्रतीक्षा करते नहीं अघाते।

कहना पड़ेगा कि विज्ञानसे सत्संगकी सुरक्षा हुई है।

आनन्द-वृन्दावन

श्रीवृन्दावनधाममें परमपूज्य प्रात:स्मरणीय महाराजश्री द्वारा स्थापित और परमश्रद्धेय महन्तश्री ओंकारानन्दजीके कुशल मार्गदर्शनमें सुचारु रूपसे संचालित यह आश्रम अपनी अनूठी छवि रखता है। देशके प्रत्येक कोनेसे भक्त, जिज्ञासु, साधक, सन्त यहाँ पदार्पण करते रहते हैं।

आश्रम स्थित भगवान् भावभावेश्वर शंकर-पार्वती मन्दिर, नृत्यगोपाल मन्दिर, श्रीराधाकृष्ण मन्दिर अपना त्रिकोण बनाये हुए हैं जहाँ, वहीं आनन्द-दर्शनका दर्शन अपने गुरुकी गम्भीर अनुश्रुति बिखेरता है। भक्त-शिष्योंकी भावनासे आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमाको गुरुपूर्णिमा, श्रावण कृष्ण अमावस्याको 'आनन्द-जयन्ती' और माघ शुक्ल एकादशीको 'संन्यास-जयन्ती' तथा मार्गशीर्ष कृष्ण त्रयोदशीको 'आराधन-उत्सव' आदि उत्सव प्रतिवर्ष आनन्दपूर्वक मनाये जाते हैं और अनेक स्थानोंसे भी महाराजश्रीके अनेक प्रेमी, भक्तजन इन पर्वोंपर सम्मिलित होते हैं।

इसके अन्तस्थ हृदयरूप 'अध्यात्म विद्याकेन्द्र'—जहाँ भक्ति-संकीर्तन, साधन और ज्ञान-गोष्ठी प्राय: चला ही करती है। इस प्रकार साधकोंको एक स्वस्थ, दिव्य मानसिक वातावरण मिलनेके कारण सांसारिक प्रलोभनोंसे सहज संरक्षण मिल जाता है। नृत्यगोपालजीके

समक्ष विशाल हॉलमें नित्यसत्संगका संचालन इसकी विशेष प्रकृति है। प्रात:स्मरणीय पूज्य महाराजश्रीके द्वारा शुरू की गयी सभी आचार्योंकी जयन्ती मनानेकी प्रथा और उनमें तत्तद् क्षेत्रके विद्वानोंको प्रवचनके लिए आमन्त्रित करना सांस्कृतिक समन्वयकी दृष्टिसे बहुत ही लोकप्रिय हो गया है। विशेष सत्सङ्गके ये सार्वजनिक आयोजन महाराजश्रीके उदार दृष्टिकोणका उत्तम उदाहरण है

महाराजश्रीके समन्वयभावके दृष्टिकोणका पोषक निम्नलिखित वचन हैं—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रूचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णवमिव॥

'वेद, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक दर्शन, शैव-शाक्तमत तथा वैष्णव सिद्धान्तके प्रतिपादक ग्रन्थोंमें अपने-अपने सिद्धान्तके विषयमें कहा है कि यही श्रेष्ठ तथा कल्याणकारी है। रुचियोंकी विचित्रताके कारण इन सिद्धान्तोंमें भेद होते हुए भी इस प्रकार परमात्माको ही प्राप्त करानेवाले हैं, जैसे सर्वनदियाँ साक्षात् अथवा परम्परासे सागरको प्राप्त कराती हैं।

'आनन्द-वृन्दावन'की अन्य गतिविधयोंमें गौ-सेवा भी अपने ढंगकी अनूठी है। कई सौ गायों और बछड़ोंका स्वर गूँजा करता है। बछड़ोंकी किलकारी सुनने लायक होती है। भगवान् भाव-भावेश्वरके निकटस्थ यज्ञशाला, कर्मकांडियोंकी वेदध्वनिसे अनुप्रणित रहती है। निर्धूम यज्ञशालामें जाज्वल्यमान भगवान् अग्निदेवका प्राकट्य समय-समयपर आकृष्ट करता है। दो वेद-विद्यालयोंमें बटु-समुदायका समवेत श्रुति-

स्वर और वेद-शास्त्र, भागवत, व्याकरण आदिका शिक्षण स्वाध्यायकी समुन्नतिके शिखरका संकेत करता है। सभी मन्दिरोंमें नियमित रूपसे विधिवत् पूजन-अर्चन, भोग-आरती आदि नित्य ही होते हैं और समय-समयपर उत्सव भी सम्पन्न होते हैं।

प्रात: ७ बजे मधुकरीकी अभ्यासी विरक्तोंकी टोली अपनी झोली भरती नज़र आयेगी, तो संत-अतिथियोंका आगमन और स्वागत-सत्कार तो निरन्तर चलता ही रहता है। पुस्तकालयका लाभ विद्यार्थियों और विद्वानों सबको मिल रहा है। लोक सेवाके लिए क्लीनिक सहित डॉक्टर और दवाखानाकी सेवा चेरिटेबल रूपमें बड़ी तत्परतासे हो रही है।

'आनन्द-वृन्दावन' आश्रम कोई मिशनरी संस्था नहीं है; यहाँ तो अध्यात्मसाधना और सत्संगका ही विशेष महत्त्व है। यहाँ निवास करनेवाले साधक अपनी-अपनी साधनामें प्रवृत्त रहते हैं। जिनको अपने जीवनमें महाराजश्रीके दर्शन, सत्संगका लाभ नहीं मिला, वे भी देश-विदेशमें रहनेवाले अध्यात्मप्रेमी लोग 'आनन्दवृन्दावन' आश्रममें आते हैं; महाराजश्रीके श्रीविग्रहका दर्शन करते हैं, प्रवचन सुनते हैं और उनके ग्रन्थ पढ़ते-पढ़ते उनके शिष्य बन जाते हैं!

यहाँ है यह श्रीवृन्दावनधाममें तीर्थराजप्रयाग, जहाँ कर्म, भक्ति और ज्ञानका संगम है। ऋद्धि-सिद्धिसे भरपूर यह प्रयाग है। श्रीमद्भागवतके अनुसार एक ही शब्दमें यहाँका वर्णन है—

श्रयत इन्दिरा शाश्वदत्र हि।

बम्बई में.....

हमारे महाराजश्रीने बम्बई नगरके नागरिकोंमें अनेक स्थानोंपर सत्सङ्ग-प्रवचनके माध्यमसे और भागवत-सप्ताहके द्वारा अध्यात्म-मार्गके प्रति रुचि ही नहीं, एक गहरी आस्थाका बीजारोपण किया; जिसका फल आज प्रत्यक्ष देखनेको मिल रहा है।

ब्र. स्वामीश्री प्रेमपुरीजी महाराजकी प्रेरणासे 'प्रेमपुरी अध्यात्म विद्या भवन'की व्यस्त गतिविधयोंमें हमारे महाराजश्रीका आजीवन अध्यक्षके रूपमें रहकर अद्भुत पोषण अविस्मरणीय रहेगा। आज भी यहाँ नियमसे सत्संगके प्रारम्भमें प्रतिदिन २० मिनट परमपूज्य महाराजश्रीकी अमृतवाणी ऑडियो कैसेट द्वारा सुनाई जाती है और हर रविवार २ से ४, २ घण्टेके लिए महाराजश्रीका वीडियोका कार्यक्रम नियमति रूपसे रहता है। परमपूज्य महाराजश्रीके सभी उत्सव भी 'अध्यात्म विद्या भवन'में बड़े उत्साहके साथ भक्त एवं शिष्य मनाते हैं।

मलाबार हिलपर स्थित 'विपुल' भवनकी चौथी मंजिलपर 'आनन्द निकुञ्ज' नामसे एक छोटा-सा स्थान है। महाराजश्री जब-जब बम्बई पधारते तो इस स्थानपर निवास करते। तीर्थस्थलकी भाँति पवित्रता और गरिमा लिये यह 'आनन्द निकुञ्ज' भक्तों एवं शिष्योंके लिए आज आनन्ददायिनी स्मृतियोंको लुटानेमें जहाँ एक ओर मंगलमय स्मृतिस्थलके रूपमें उल्लसित हो रहा है; वहीं दूसरी ओर नित्य रविवारी सत्संगका एक केन्द्र भी बन गया है।

प्रति रविवार प्रात: ९ से १० वीडियो अथवा ऑडियोसे सत्संगका सुन्दर कार्यक्रम और पारस्परिक सत्संग-चर्चाके साथ-साथ प्रसाद हाथमें

ग्रहणकर लोग प्रफुल्ल हृदयसे मानो दृढ़ संकल्प लिए बिदा होते हैं कि जो हमने सुना है, वह जीवनमें आचरण करके दिखायेंगे?

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्टके ट्रस्टीगण और निष्काम सहयोगी सेवक कृतसंकल्प हैं कि हमारे महाराजश्रीकी अमृतवाणी घर-घर पहुँचे। महाराजश्रीके लीलासंवरणके पश्चात् ट्रस्टका प्रकाशन, महाराजश्रीकी ही कृपासे तीव्रगतिको अपना पाया है। ट्रस्टका प्रधान कार्यालय बम्बईमें है।

भक्तोंकी माँगको देखते हुए अब अलगसे केन्द्रोंपर ऑडियो, वीडियो कैसेट एवं प्रकाशित ग्रन्थकी व्यवस्था भी श्रीमहन्तजी द्वारा कर दी गयी है; जिनके पते ग्रन्थके अन्तमें दिये गये हैं।

कहना न होगा कि महाराजश्रीके प्रवचनों, लेखों एवं ऑडियो कैसेटसे संकलित अमृतवाणीके प्रकाशनने भारतके ही नहीं विश्वके अध्यात्म-क्षेत्रमें एक क्रांतिका रूप ग्रहण कर लिया है और जिन-जिनने भी महाराजश्रीके लीला-कालमें साक्षात्-दर्शन नहीं किये, वे उनकी इस वाङ्मय विभूतिमें ही उनका दर्शन कर धन्य-धन्य होते हैं।

अमृत-महोत्सव समितिके कुछ सदस्य जब परम पूज्य महाराजश्रीकी स्मारिका छपवानेकी योजना लेकर महाराजश्रीके पास अनुमति लेने गये तो वे मुस्कुराकर बोले कि हमारी स्मारिका तो हमारे द्वारा कहे गये विचार हैं। हमको यदि जानना हो तो हम क्या कहते हैं, वह पढ़ो! लोग हमारे बारेमें जो कहेंगे, वह पढ़कर हमको भला कोई क्या जान पावेगा!

फिर भी उन्होंने हमारे हितके लिए कुछ 'पावन प्रसंग' कृपापूर्वक लिखवाये जो पहले आनन्द बोध मासिक पत्रिकामें छापे बादमें उन्हें संकलित करके 'पावन प्रसंग' नामक ग्रन्थके रूपमें पाठकोंको सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट द्वारा उपलब्ध कराया गया है।

गुरु-कृपा

यद् यद् पश्यति चक्षुर्भ्याम्
यद् यद् स्पृशति पाणिना।
स्थावराणि अपि मुच्यन्ते
किं पुनः इतरे जनाः॥

शास्त्रोंमें वर्णन आता है कि तत्त्वज्ञानी पुरुष जिस-जिसको अपनी रसदायिनी ज्ञान-दृष्टिसे देख लेता है, वह मुक्त हो जाता है। जिस-जिसको अपने हाथसे छू देता है, वह भी मुक्त हो जाता है। जब जड़ भी मुक्त हो जाता है तो चेतनकी तो बात ही क्या?

सचमुच महाराजश्रीकी इस रसदायिनी दृष्टिसे श्रान्त व्यक्तिको ताज़गीका अनुभव होने लगता है। बीमार व्यक्ति बीमारीको भूलकर मन्द-मन्द मुस्कुरा उठता। व्यापारी इसे पाकर व्यापारमें और ज्यादा उत्साहसे संलग्न हो जाते एवं जिज्ञासुओंके तो वे सर्वस्व थे। निरन्तर गम्भीर-से-गम्भीर परिस्थितिमें भी यह प्रेम-प्रसाद उनकी आँखोंसे निरन्तर बरसता रहता। इस घोर कलिकालमें मानव सर्वत्र लताड़ा जाता है। जब व्यक्ति महाराजश्रीके सम्पर्कमें आता तो उसकी जन्म-जन्मकी प्यास बुझ जाती थी। जो व्यक्ति जिस कामनासे उनके पास आया, उसे वह मिला। चारों पुरुषार्थ एवं पञ्चम पुरुषार्थ भक्तिको वे अन्ततक लुटाते रहे। जिनका जितना पात्र था, उन्होंने भर-भर कर लिया।

वही अनुग्रह-विग्रह, वात्सल्यमूर्ति महाराजश्री कृपापूर्वक हमारे चित्तमें थोड़ा-सा ब्रह्मविचार भर दें, जिससे कि उनके चरण-चिह्नोंपर चलकर उस मंजिलपर पहुँच सकें जहाँसे—**'यद्गत्वा न निवर्तन्ते'**।

महाराजश्री

एक परिचय

महाराजश्री किसी मत–मतान्तर अथवा धर्म–समुदायके वादविशेषको स्वीकृति देकर धर्मोपदेश करनेवाले आचार्य नहीं हैं। वे सन्त हैं। मनुष्य–जीवनको उत्कर्षकी ओर ले जानेवाले सर्वविध आचार–विचारोंके प्रकार उनकी गुरुतामें सत्ता एवं स्फूर्ति पाते हैं। सन्तका स्वरूप–बोध करानेवाली महर्षि व्यासकी यह उक्ति–
वादवादांस्त्यजेत् तर्कान् पक्षं कं च न संश्रयेत् महाराजश्रीमें पूर्णतः चरितार्थ होती है। वे किसीके छेदन–भेदनकी प्रवृत्तिके कभी आश्रय नहीं बनते और न ही किसी वादी–प्रतिवादी अथवा विपक्षीके विरोधके विषय ही; क्योंकि अविरोधी अद्वैत परमात्म सद्वस्तु ही उनका स्वरूप है, उसीमें उनकी निष्ठा है। अद्वय परमार्थ सत्य ही उनकी क्रिया, वाणी, भाव एवं विचारों द्वारा निरन्तर अभिव्यञ्जित होता है।

छलकते हुए आनन्द और आह्लादकी तो महाराजश्री साक्षात् प्रकट मूर्ति ही हैं। जो भी उनके निकट सम्पर्कमें आ चुका है, वह निश्चय ही उनकी पवित्र एवं उच्छल स्नेह धारामें अवगाहन किये बिना नहीं रहा। समाधि, ज्ञान एवं आनन्दका विलक्षण समन्वय महाराजश्रीके जीवनमें प्रकट है।

आनन्द कानन प्रेस
रेड्डीबीच, वाराणसी • फोन : 2392337